वर्ष–2, अंक–4
इंटरनेट संस्करण : 67

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
जून 2012

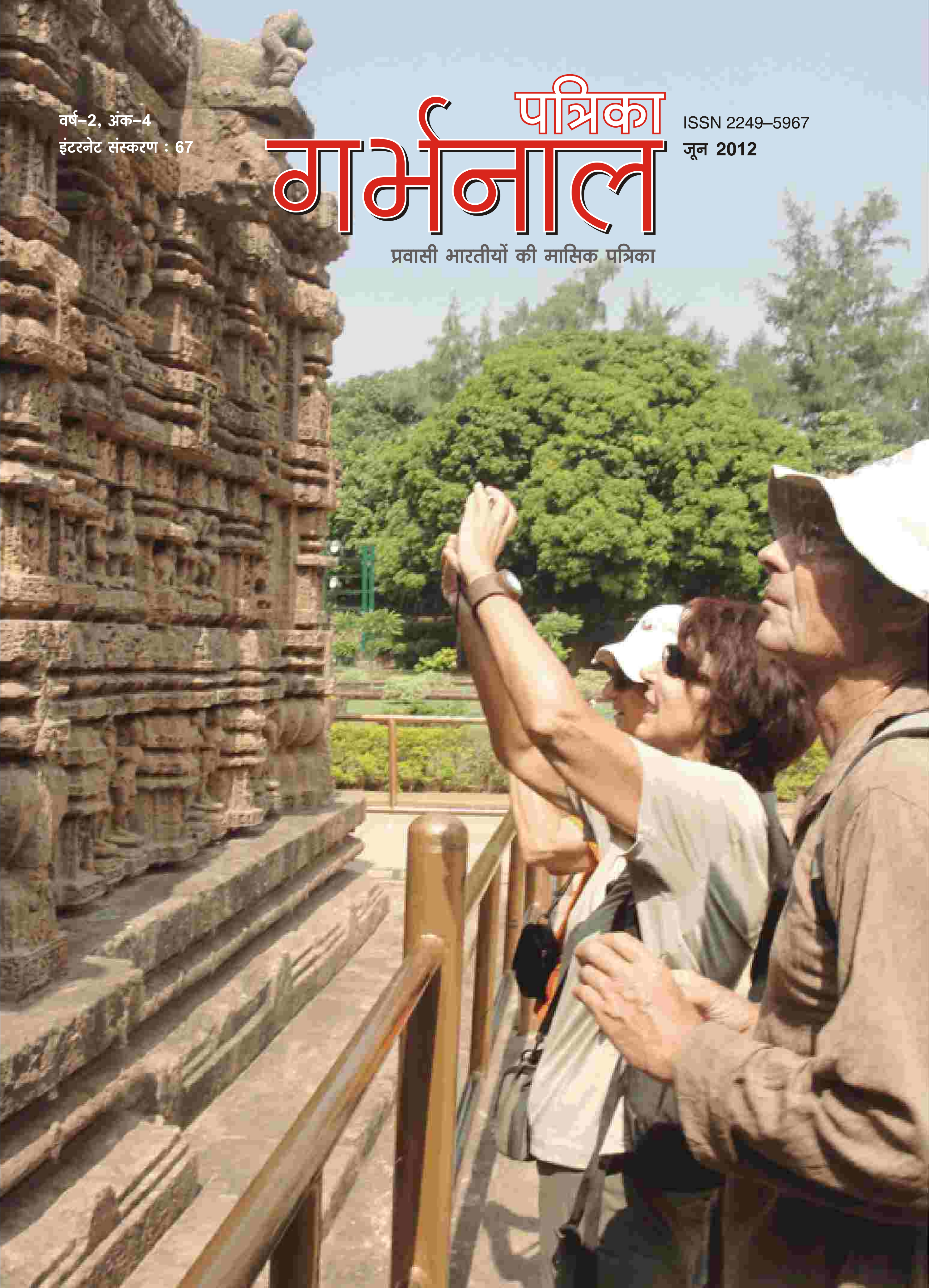

रामानंद शर्मा
ramanand210@gmail.com

विवेकानन्द का पुनर्पाठ, सन २००२ में उनके तिरोधान के एक सौ साल बाद के अन्तर पर. समय-समय पर लिखे गए उनके पत्रों के आइने में कथाकार शंकर ने अपनी पुस्तक 'अचेना अजाना विवेकानन्द' (The unknown life of Vivekanand) में परिब्राजक, ऑरेटर, पैट्रिऑट और सेण्ट स्वामी विवेकानन्द के व्यक्ति रूप के अन्तरंग पक्ष को जानने के सूत्र उपलब्ध किए हैं. व्यक्ति रूप में उनसे रूबरू होने का इस पुस्तक में दस्तावेजों के साथ विवरण प्रस्तुत किया गया है स्वामी विवेकानन्द सारे सांसारिक बन्धनों से मुक्ति की औपचारिकता पूरी करने के बाद भी सन्तान के दायित्व के प्रति समर्पित रहे थे. विदेशों में वेदान्त एवम् बिरियानी का एक साथ प्रचार करने वाले इस अनोखे और अकेले व्यक्ति के नितान्त निजी और नाजुक तजुर्बों और एहसासात की तस्वीर उभरती है.

नवम्बर १८९८ को बेलुड़ से खेतड़ी के महाराजा को पत्र लिखा : 'माननीय महाराजा, आप जानते हैं कि विदेश से लौटने के बाद मैं अस्वस्थ रह रहा हूँ. यह अस्वस्थता जानेवाली नहीं है. पिछले दो सालों में नाना स्थानों में वायु-परिवर्तन करने के बावजूद हालत रोज-रोज बिगड़ती जा रही है. अभी मैं प्रायः मृत्यु के द्वार पर हूँ. आज मैं महाराज के द्वारा दिए गए आश्वासन, महानुभवता, एवम् बन्धुत्व के पास एक आवेदन कर रहा हूँ. एक दायित्व हर पल मेरी छाती में चुभता रहता है. अपनी माँ के प्रति मैंने बहुत अविचार किया है. हमारे मँझले भाई महेन्द्रनाथ के बाहर चले जाने के कारण माँ बहुत शोकाकुल हो गई है. अभी मेरी एक ही इच्छा है, थोड़े से समय के लिए ही सही, माँ की सेवा कर पाप-स्खलन करूँ. मैं माँ के पास रहना चाहता हूँ. वंश लुप्त न हो जाए इसलिए छोटे भाई का विवाह करवाना चाहता हूँ. इससे मेरे और मेरी माँ के जीवन के बाकी कुछ दिन शान्ति से बीतेंगे. इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके लिए एक छोटा-सा घर बनवा देना चाहता हूँ. छोटे भाई की उपार्जन-क्षमता कम है, उसके लिए कुछ कर जाने की जरूरत है. मैं अब अधिक से अधिक एक दो साल जीवित रहूँगा. मेरी मृत्यु के बाद भी माँ के लिए आपकी एक सौ रुपए प्रति माह की सहायता नियमित रूप से उसके पास पहुँचती रहे, इसका ध्यान रखिएगा.'

भगिनी निवेदिता को लिखे पत्र में उन्होंने अपने जीवन के बचे हुए दिन माँ के पास लौट कर बिताने की अभिलाषा जाहिर की थी. 'ये कई वर्ष मैं न जाने किस नशे में आच्छन्न था! महत्वाकांक्षा का पागलपन? लेकिन मैं तो कभी भी महात्वाकांक्षी नहीं था. ख्याति का बोझ मेरे कन्धों पर लाद दिया गया था.'

बीमार एवम् भूखे लोगों के प्राण बचाने के लिए विवेकानन्द अपने मठ की जमीन तक बेच देने को राजी थे. पंजाब में अकाल के हालात थे, तब उन्होंने सखाराम गणेश को लिखा था, जब तक देश का एक कुत्ता भी भूखा रहे, मेरा धर्म होगा उसको खिलाना, उसकी सेवा करना, बाकी सारी बातें अधर्म होंगी. एक बार एक वेदान्त विशारद के मुँह पर ही उन्होंने कहा था— पण्डितजी, पहले उन लोगों के लिए कुछ करें, जो एक मुट्ठी अनाज के लिए कराह रहे हैं, उसके बाद ही वैदान्तिक शास्त्रार्थ के लिए मेरे पास आइए.

उन्होंने अपने परिब्राजक जीवन के अवर्णनीय कष्ट का विवरण कैलिफॉर्निया में अपने भक्तों को इस तरह सुनाया था— कितनी ही बार मैं भूख, घावों से भरे पाँव और थकावट से चूर होकर मौत के करीब पहुँचा हूँ. क्लान्त शरीर पेड़ की छाया में पड़ा रहता, तब लगता कि प्राणपखेरू उड़ जाएँगे. बोल नहीं सकता था. और तभी मन में ऐसा विचार उभड़ता, मुझे कोई भय नहीं, मेरी मृत्यु नहीं. मेरा जन्म नहीं हुआ, मेरी मृत्यु भी नहीं होगी. समस्त प्रकृति की क्षमता नहीं कि मुझे कुचल कर मारे. प्रकृति तो मेरी दासी है. हे देवाधिदेव, हे परमेश्वर, अपनी महिमा प्रकाशित करो, अपने राज्य में प्रतिष्ठित होओ. उत्तिष्ठ! जाग्रत! उदासीन नहीं होना. बस, मैं ताजा होकर खड़ा हो जाता. इसीलिए मैं आज भी जीवित हूँ.

परिब्राजक विवेकानन्द का संन्यासी जीवन कुल पन्दरह सालों का था, वे अपने द्वारा प्रतिष्ठित बेलुर मठ में कुल १७८ दिनों तक ही रहे थे. इसके अलावे एक स्थान पर उनका दीर्घतम अवस्थान खेतड़ी में पाँच महीने का था. अन्यथा अपने जर्जर होते स्वास्थ्य के बावजूद यह परिब्राजक चरैवेति, चरैवेति के मंत्र को जीता रहा था.

इतिहास के नायकों के प्रति सुधिजनों के बोध का विवरण अक्सर विडम्बना से भरा होता है. स्वामीजी के तिरोधान के पश्चात् आयोजित स्मृतिसभा का सभापतित्व करने का अनुरोध कलकत्ता हाईकोर्ट के दो विचारपतियों से किया गया था. दोनों ने ही अपमानजनक मन्तव्य करते हुए उस अनुरोध को ठुकरा दिया था. एक जज साहब ने तो कहा था कि अगर देश में हिन्दू राजा का शासन होता तो विवेकानन्द को फाँसी हुई होती.

शंकर ने टिप्पणी की है : 'अपने समय में विश्वव्यापी हलचल उठाने के बावजूद स्वामी विवेकानन्द को सम्पूर्णता से ग्रहण करने में हमें काफी समय लगा है. युगनायक विवेकानन्द को भारतवन्दित करने में सबसे बड़ा योगदान उनके द्वारा प्रतिष्ठित रामकृष्ण मिशन एवम् मठ का है. अगर इन संन्यासियों ने इस प्रतिष्ठान को सौ वर्षों से प्राणवन्त नहीं रखा होता तो कदाचित् स्वामी विवेकानन्द आज स्मरणीय नहीं रहते.'

ganganand.jha@gmail.com

गर्भनाल पत्रिका

वर्ष-2, अंक-4 (इंटरनेट संस्करण : 67)

जून 2012

सम्पादकीय सलाहकार

गंगानन्द झा

परामर्श मंडल

वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
भावना सक्सैना, सूरीनाम
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक

सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग

डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग

डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग

प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार

संजीव जायसवाल

सम्पर्क

डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र

रामानुज शर्मा

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

भूल सुधार :
गर्भनाल के मई-२०१२ अंक में आवरण छायाचित्र में त्रुटिवश रामानुज शर्मा का नाम चला गया. इस छायाचित्र के छायाकार श्री ओमप्रकाश कादयान हैं. इस चूक के लिए हमें खेद है. - **सं.**

>> 4
साहित्य में मौलिकता का प्रश्न

>> 13
प्रतिभा और मेधा

>> 18
ग्लोबल वार्मिंग की समस्या का हल

>> 20
मायामी से बहामाज़ तक

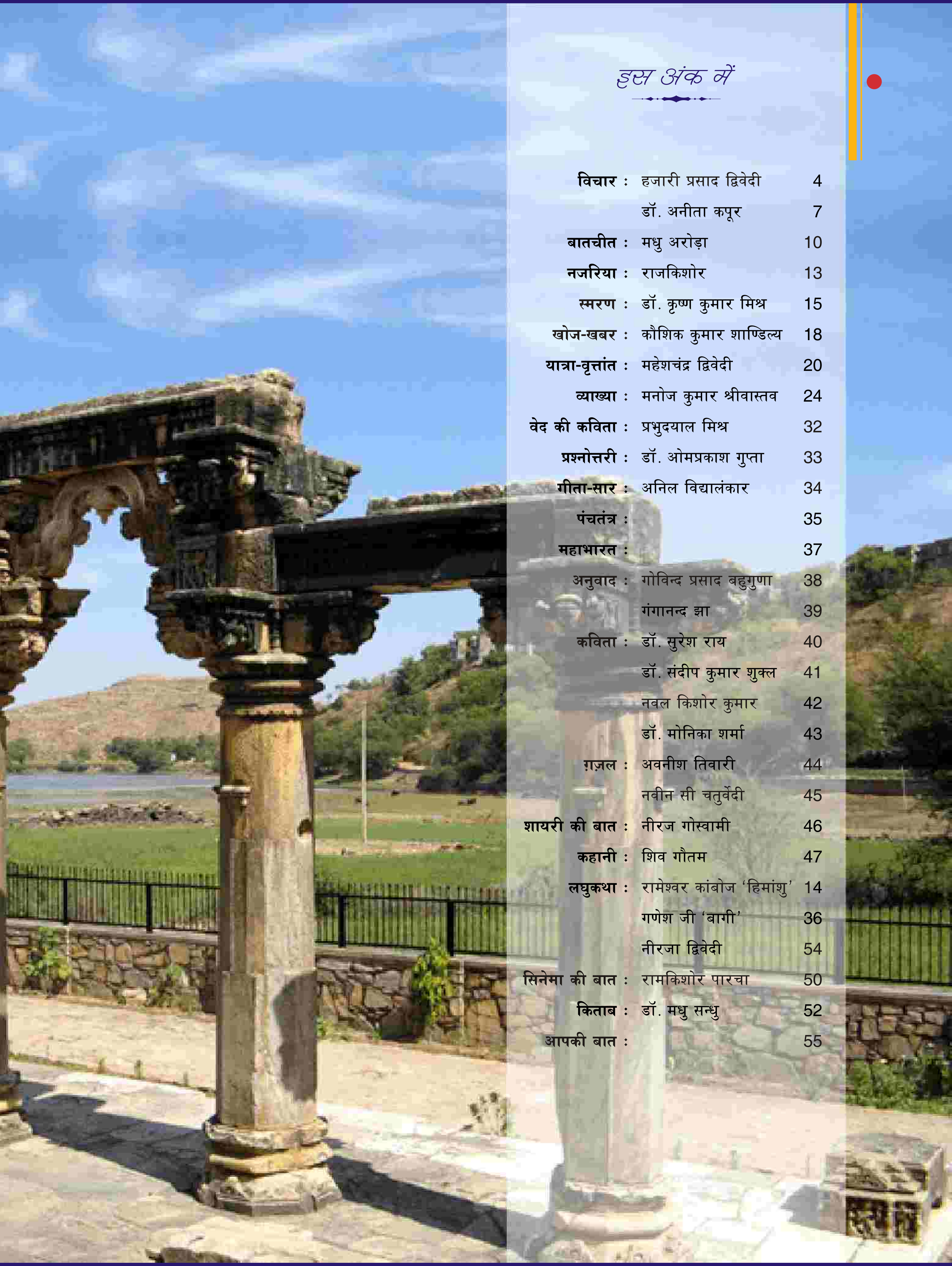

इस अंक में

विचार :	हजारी प्रसाद द्विवेदी	4
	डॉ. अनीता कपूर	7
बातचीत :	मधु अरोड़ा	10
नजरिया :	राजकिशोर	13
स्मरण :	डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र	15
खोज-खबर :	कौशिक कुमार शाण्डिल्य	18
यात्रा-वृत्तांत :	महेशचंद्र द्विवेदी	20
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	24
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	32
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	33
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	34
पंचतंत्र :		35
महाभारत :		37
अनुवाद :	गोविन्द प्रसाद बहुगुणा	38
	गंगानन्द झा	39
कविता :	डॉ. सुरेश राय	40
	डॉ. संदीप कुमार शुक्ल	41
	नवल किशोर कुमार	42
	डॉ. मोनिका शर्मा	43
ग़ज़ल :	अवनीश तिवारी	44
	नवीन सी चतुर्वेदी	45
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	46
कहानी :	शिव गौतम	47
लघुकथा :	रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	14
	गणेश जी 'बागी'	36
	नीरजा द्विवेदी	54
सिनेमा की बात :	रामकिशोर पारचा	50
किताब :	डॉ. मधु सन्धु	52
आपकी बात :		55

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

जन्म : १९ अगस्त १९०७. आधुनिक युग के मौलिक निबंधकार और उत्कृष्ट समालोचक आचार्य. प्रारंभिक शिक्षा गांव के स्कूल मे. ज्योतिष विषय लेकर आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की. शिक्षा प्राप्ति के बाद शांति निकेतन पहुँचे और कई वर्षों तक हिंदी विभाग में कार्य करते रहे. शांति-निकेतन में रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन के प्रभाव से साहित्य का गहन अध्ययन और उसकी रचना प्रारंभ की. वे हिंदी, अंग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के विद्वान थे. भक्तिकालीन साहित्य का उन्हें अच्छा ज्ञान था. लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर उनका विशेष सम्मान किया. उनके निबंधों के विषय भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन हैं. उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन १९५७ में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया. १९७९ में निधन.

विचार

साहित्य में मौलिकता का प्रश्न

मौलिकता यद्यपि संस्कृत 'मूल' शब्द से बनाये हुए विशेषण का भाववाचक रूप है, तथापि हिन्दी साहित्य में इसका प्रयोग नया ही है. वस्तुतः यह अंग्रेजी के 'ओरिजनेलिटी' शब्द के तौल पर गढ़ा हुआ नया शब्द है. अंग्रेजी के साहित्य में 'ओरिजनेलिटी' शब्द का प्रयोग दीर्घकाल से होता आ रहा है. लैटिन में 'औररिरि' धातु है जो उदय होने के अर्थ में प्रयुक्त होती है, उसी से 'ओरिगो' और 'ओरिजिन' शब्द बने हैं, 'ओरिएन्स' और 'औएन्स' शब्द भी उसी से आये है. लैटिन के 'ओरिगो' शब्द का अर्थ है आरम्भ. 'ओरिजनल' शब्द का अभिधेयार्थ आरिम्भक है और लक्ष्यार्थ वह रूप है जो पहले न रहा हो, नवीन हो. साहित्य में 'ओरिजनल' शब्द ऐसे साहित्य, रूप, शैली, भाव और विषय-वस्तु के अर्थ में प्रयुक्त होता है जो नवीन उद्‌भावित हों और पूर्ववर्ती लेखकों में पाये न जाते हों. अंग्रेजी के साहित्यिक ग्रन्थों में इस बात को लेकर बड़ी चर्चा है कि मौलिकता है क्या वस्तु. कापीराइट एक्ट के सारे संसार में प्रचलित होने के कारण इस शब्द का व्यावसायिक क्षेत्र में भी प्रवेश हुआ है और इसे कानूनी पण्डितों के विचार-विमर्श का विषय बनना पड़ा है.

> *मध्यकाल में बहुत उच्चकोटि के ग्रन्थ प्राचीन ऋषियों और देवताओं के नाम से लिखे गये हैं. उनमें संस्कार भी हुए हैं, परिवर्तन भी हुए हैं, लेकिन लेखक सदा अपने-आपको छिपा लेने का प्रयत्न करता रहा है.*

आधुनिक युग में मौलिकता की इच्छा अर्थात् कुछ नया देने की लालसा बड़े प्रबल रूप में दृष्टिगोचर हुई है. परन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भ होने के पहले बात ऐसी नहीं थी. मध्यकाल में बहुत उच्चकोटि के ग्रन्थ प्राचीन ऋषियों और देवताओं के नाम से लिखे गये हैं. उनमें संस्कार भी हुए हैं, परिवर्तन भी हुए हैं, लेकिन लेखक सदा अपने-आपको छिपा लेने का प्रयत्न करता रहा है. रोमन काल में लैटिन में लिखे हुए ग्रन्थों में अनेक कौशलों के द्वारा लेखक इस बात का प्रयत्न करते थे कि उनका नाम प्रच्छन्न रूप में ग्रन्थ रहे और कोई दूसरा लेखक उसे चुरा न सके. ठीक उन्हीं दिनों भारतवर्ष में प्राचीन आचार्यों, महर्षियों और देवताओं के नाम पर ग्रन्थ रचे जाते थे और लेखक का पूरा प्रयत्न होता था कि किसी को पता न लगने पाये कि वह पुराने ऋषि की रचना न होकर नये मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार है. जब कोई लेखक किसी सर्वज्ञ या देवता के नाम पर ग्रन्थ की रचना करता है तो उसमें दो बातें प्रधान रूप से काम करती हैं. प्रथम तो यह कि उसके नस-नस में ऐसा विश्वास व्याप्त होता है कि उसने जो कुछ सोचा या समझा है वह नया नहीं है,

बल्कि पुराकाल के पूर्वजों के ज्ञान का ही उसके चित्त में प्रतिफलित रूप है. दूसरे, वह अधिक-से-अधिक सावधानी बरतता है और पूर्ण समाहित होकर ज्ञान को पवित्र-से-पवित्र ज्योति के रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करता है. इन दो बातों के कारण उसके द्वारा लिखित साहित्य में हल्कापन नहीं आने पाता.

नये युग में मनुष्य की वैयक्तिकता को बहुत महत्व दिया गया है और समझा जाने लगा है कि प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व अलग है और साहित्य में उसके व्यक्तित्व के विशिष्ट अंश का प्रतिबिम्बित होना उसकी मौलिकता है.

डॉ. केर्न ने 'वृहद् संहिता' की भूमिका में भारतीय लेखकों की इस विचित्र वृत्ति और इससे उत्पन्न संयम पर आश्चर्य प्रकट किया है. उन्हीं दिनों लैटिन ग्रन्थकारों से तुलना करने पर यह तथ्य और भी उज्जवल रूप में प्रकट होता है. और भी आगे बढ़ने पर भारतवर्ष में ज्ञान के साधकों की टीका का युग आरम्भ होता है. इस काल में पूर्ववर्ती ग्रन्थों की टीकाएँ या भाष्य लिखे जाते रहे हैं. यद्यपि इन भाष्यों, टीकाओं आदि में प्रचुर मौलिक चिन्तन और बौद्धिक सूक्ष्मता प्राप्त होती है तथापि टीका करने वाला उसे पूर्ववर्ती ज्ञान का ही साधरण रूप मानता है. उसका अपना कृतित्व पूर्ववर्ती ज्ञान को ठीक-ठाक समझने और उसे अधिक-से-अधिक अर्थप्रसू भाषा में व्यक्त करने में होता है. साहित्य के क्षेत्र में भी प्रख्यात चरित्र और प्रसिद्ध घटनाओं का विन्यास नये सिरे से किया जाता है. मौलिकता विषय के विन्यास और उसकी सीमित परिधि में नवीन कल्पनाओं और नवीन अर्थ योजनाओं में निहित मानी जाती है. हिन्दी के रीतिकाल में तो संस्कृत के साहित्य-शास्त्र में गृहीत सिद्धान्तों को मोटे-रूप में स्वीकार करके उन्हें लोक-गम्य भाषा में प्रकट करना ही कवि का कृतित्व माना जाने लगा.

हमारे देश की नवीन शिक्षा-प्रणाली उन्नीसवीं शताब्दी के मानवतावादी उदारमना यूरोपीय आदर्शों के अनुकरण पर चलायी गयी है. इंग्लैण्ड में व्यावसायिक क्राँन्ति होने के बाद मनुष्य का मूल्यांकन पुरानी मर्यादाओं या शास्त्रविहित नियमों के आधार पर न होकर स्वतन्त्र रूप में किया जाने लगा. पहले के धार्मिक वृत्ति के शास्त्रवादी विचारकों ने स्वर्ग या मुक्ति पाने के उद्देश्य से जो व्यवस्था प्रवर्तित की थी, उसे सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा और मनुष्य को इसी मर्त्यकाया में सुख और सुविधा प्राप्त हो, उसका चित्त सुसंस्कृत हो, उसे आर्थिक और सामाजिक बन्धनों से मुक्ति मिले, इन बातों पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा. भारतवर्ष की नवीन शिक्षा-प्रणाली इसी आधार पर गठित हुई और नये शिक्षित लोगों में यही विचार जड़ जमाने लगा. यह माना जाने लगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास अपने ढंग से कर सकता है और उसका अपना व्यक्तित्व है. साहित्य में इस विचार ने अपने को नाना रूपों में प्रकट किया और नवीनता की माँग नित्य नवीन रूप में प्रकट होने लगी. प्रत्येक प्रकार के बन्धन और रूढ़ियों से विद्रोह किया गया और बहुत दिनों तक इस विद्रोह को ही मौलिकता समझा जाता रहा. कभी-कभी तो छापने की प्रक्रिया में नवीनता लाने को भी मौलिकता का नाम दिया गया. छापे की मशीन ने साहित्य को जहाँ सुलभ बनाया, वहीं साहित्यकारों के नये-नये प्रयोगों और नयी-नयी कलाबाजियों को भी मुखर बनाया.

परन्तु साहित्य की मौलिकता केवल बाह्य आकारों की सजावट में नहीं है. नये युग में मनुष्य की वैयक्तिकता को बहुत महत्व दिया गया है और समझा जाने लगा है कि प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व अलग है और साहित्य में उसके व्यक्तित्व के विशिष्ट अंश का प्रतिबिम्बित होना उसकी मौलिकता है. इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य की मौलिकता लेखक के व्यक्तित्व के साथ घनिष्ठ भाव से सम्बद्ध है, परन्तु इसे भी नहीं अस्वीकार किया जा सकता कि अनियन्त्रित व्यक्तित्व जो सामाजिक और परम्परागत सामूहिक व्यक्तित्व से असम्बद्ध और प्रतिकूलगामी होता है, वह दुनिया के किसी काम नहीं आ सकता (जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का एक व्यक्तित्व है, उसी प्रकार सम्पूर्ण समाज का भी एक व्यक्तित्व है). जो व्यक्तित्व इस सामाजिक व्यक्तित्व के प्रतिकूल जाता है, वह असामाजिक है और हानिकर है. इसी भाव को व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी में 'अनशोसल' शब्द चला. और समाज का व्यक्तित्व क्या है? वह कुछ परम्परागत विचारों का निरन्तर विकसित होते रहने वाला स्वरूप है.

आधुनिक साहित्य के पूर्व उस सामाजिक व्यक्तित्व को जड़ और अचल मान लिया गया था. नवीन वैज्ञानिक युग के संचारकों उसे चेतन वस्तु स्वीकार किया और इस विश्वास को बध्दमूल बनाया कि जिस प्रकार जीवन्त प्राणी परिस्थितियों के सामने झुकता है, पीछे हटता है, मुड़ता है और उस पर विजय पाने की चेष्टा करता है. इसीलिए वह निरन्तर विकासमान होने में सहायक होते हैं उसी प्रकार समाज के कारीगर, दार्शनिक, कवि और मजदूर इत्यादि उसके व्यक्तित्व को अग्रसर करने में सहायक होते हैं. जिस प्रकार व्यक्ति-मानव को पित्-पितामहों से प्राप्त गुण-दोष उसे सबल या निर्बल बनाते हैं, उसी प्रकार सामाजिक व्यक्तित्व भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, कवियों, दार्शनिकों और विचारकों से प्राप्त रीति के अनुसार सबल या निर्बल होता है. जिस प्रकार व्यक्ति-मानव बाह्य उपकरणों के सहारे अपने को आंशिक रूप में सबल या दुर्बल बना सकता है, उसी प्रकार समाज-मानव भी अन्य संस्कृतियों, साहित्य और धर्म-परम्पराओं को उचित मात्रा में ग्रहण करके रोगी बन सकता है. इस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व कई तत्वों से गठित है और वह समाज के परम्परा प्राप्त और निरन्तर विकसित होते रहने वाले रूप का अविरोधी रहकर ही सामाजिक मंगल का विधान कर सकता है. पिछले समय के व्यक्तित्ववादी साहित्यकारों में कितने ही इस तथ्य को ठीक-ठाक हृदयंगम नहीं कर सके हैं और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के जोश में असामाजिक मौलिकता का प्रदर्शन करने लगे हैं. ऐसी ही दशा में मौलिकता घासलेटी साहित्य के नाम से कुख्याति प्राप्त करती है. वस्तुतः सच्ची मौलिकता सामाजिक मौलिकता की अविरोधिनी है, इसलिए सामाजिक मंगल के अनुकूल व्यक्तित्व की उज्जवल अभिव्यक्ति मौलिकता है.

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि परम्परा के प्रति या समाज के विकासमान व्यक्तित्व के प्रति विद्रोह ही मौलिकता नहीं है और परम्परागत विषय-वस्तु का विन्यास मौलिकता का विरोधी भी नहीं है. लेखक का वही व्यक्तित्व सच्ची मौलिकता का अधिकारी हो सकता है जो सामाजिक मंगल के प्रतिकूल न हो. अनेक प्राचीन और अर्वाचीन शास्त्रों के अनुशीलन से सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने वाला लेख ही साहित्य में ऐसा कुछ दे सकता है जिसे मौलिक कहा जा सकता है. यह मौलिकता उसके व्यक्तिगत चिन्तन का और उसकी अपनी समंजस दृष्टि का परिचय साहित्य के माध्यम से देती है. मौलिकता परम्परा-प्राप्त विचारों की इस प्रकार सजावट में है जो साधारण पाठक के लिए सामाजिक मंगल के स्वरूप को अधिक स्पष्ट और ग्रहणीय बना सके. इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बँगला में 'ओरिजनेलिटी' के तौल पर चलने वाले मौलिकता के लिए 'स्वकीयता' शब्द चलाया था. मौलिकता समंजसविधायिनी दृष्टि की स्वकीयता है. उसमें विद्रोह उन असामाजिक तत्वों के प्रति होता है जो मानव-समाज के विकास के प्रतिकूल जाते हैं. विद्रोह होना ही बड़ी बात नहीं है. विद्रोह का स्वरूप क्या है और वह सामाजिक अग्रगति में कितना सहायक है, यही बड़ी बात है. इसलिए सामाजिक मंगल के अनुकूल परम्परा-प्राप्त चिन्तन और विचार-धारा से परिष्कृत तथा नवीन परिस्थिति पर विजय की अकांक्षा से समृब्द व्यक्तित्व को रसमय और ग्राह्य बनाकर अभिव्यक्त करने में भी साहित्यिक मौलिकता या साहित्यिकता हो सकती है. यह प्राचीन लेखकों से इस अर्थ में भिन्न होती है कि यह नवीन परिस्थिति के ऊपर मनुष्य की अग्रगति से विजय पाने की लालसा से समन्वित और विशिष्ट होती है और प्राचीन शक्तिशाली लेखकों के समान मंगल-बुद्धि से प्रेरित होती है और उनके विचारों को आत्मसात् करने के कारण उनसे एकदम विच्छिन्न नहीं है.

> साहित्य का मुख्य उद्देश्य सहज भाषा में ऊँचे विचारों और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को अनायास ग्राह्य बनाना है. प्रेषण-धर्मिता उसका मुख्य गुण है.

मेरी दृष्टि में साहित्य की मौलिकता का प्रतिमान यही समाज की मंगल-दृष्टि से अनुप्राणित, परम्परा-प्राप्त शास्त्रीय दृष्टि से सुसंस्कृत और लोक-चित्त में सहज ही सुचिन्तित तत्वों को सरस रूप में प्रतिफलित करने में समर्थ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है. यह व्यक्तित्व जितना उज्जवल और शक्तिशाली होगा, साहित्य की मौलिकता उतनी उज्जवल और दृप्त होगी.

मौलिकता अन्य शास्त्रों में भी है, रहती ही है. साहित्य का मुख्य उद्देश्य सहज भाषा में ऊँचे विचारों और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को अनायास ग्राह्य बनाना है. प्रेषण-धर्मिता उसका मुख्य गुण है. इसलिए जो व्यक्तित्व सहज होता है, अर्थात् जिसमें जटिल मानस-ग्रन्थियों और ब्राह्य आडम्बरों का प्राधान्य न होकर स्वाभाविक मनोरमता होती है, वही ऊँचे जीवन-मूल्यों को लोक-चित्त में अनायास संचारित कर सकता है. इसीलिए साहित्य में सहज होना (मैं सरल नहीं कहता) भी मौलिकता का श्रेष्ठ प्रतिमान है.■

डॉ. अनीता कपूर

जन्म : भारत. शिक्षा : एम.ए. (हिंदी एवं इंग्लिश), पी-एच.डी. (इंग्लिश), सितार एवं पत्रकारिता में डिप्लोमा. कवियत्री, लेखिका, पत्रकार (नमस्ते अमेरिका समाचार-पत्र) एवं अनुवादिका. फ्रेमोंट हिन्दू मंदिर और सांस्कृतिक केंद्र में योगदान हेतु अनेकों बार पुरस्कृत, हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी पढ़ाना और सम्मेलन करना. हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में प्रथम पुरुस्कार. प्रकाशन : काव्य संग्रह 'बिखरे मोती', 'कादम्बरी' एवं 'अछूते स्वर' प्रकाशित. भारतीय एवं अमरीका की पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, एवं लेख प्रकाशित.

सम्पर्क : anitakapoor.us@gmail.com

कविता की रचना प्रक्रिया और सर्जनात्मकता

साहित्य की किसी भी विधा की रचना प्रक्रिया और सर्जन, अपने मन के अनुसार करना मानव स्वभाव का अंग है. रचना के रूप अलग हो सकते हैं पर सृष्टि, देश, समाज, परिवार, प्रकृति, अनुभूति और अभिव्यक्ति का कलात्मक आकलन ही साहित्य की सर्जनात्मकता है.

आत्माभिव्यक्ति रचना की पहली प्रक्रिया है. इस अभिव्यक्ति के माध्यम कई हो सकते हैं. शब्द, रंग, रेखाएँ किसी भी माध्यम से, जिसमें रचनाकार को सहजता और सुविधा महसूस हो, रचना की जा सकती है. कविता के लिये प्रतिभा की आवश्यक्ता होती है. कविता सांकेतिक होती है. बिम्ब और कल्पनाशक्ति उसमें महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. रचनात्मक लेखन का सर्जन करने के लिए कोई फार्मूला नहीं होता, उसके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और वातावरण, निरंतर अभ्यास और लेखन की अनुभूति हो, तो कोई भी व्यक्ति अच्छा लेखक बनने की कोशिश कर सकता है. कविता की रचना प्रक्रिया में कोई फार्मूला न होने के बावजूद फार्मूलाबद्ध लेखन का प्रयास होता ही रहा है.

कविता क्या है और इसका सर्जन कैसे होता है? कविता जीवन है या जीवन कविता है, कविता कहीं से भी चुपके से आती है और बहुत-सी अनकही बातें विचार बन शब्दों में ढाल कविता बन जाते हैं. नींद में साँस भी लयात्मक कविता हो सकती है, दो पंक्तियों के बीच का मौन भी कविता है, कविता जीवन में बहती है, कविता साथ-साथ चलती है. कविता सबके जीवन में है, कविता लिखने के लिए पहले से ही साहित्यकार होने की जरूरत नहीं होती.

जीवन यात्रा में विचार, आदर्श, प्रेरणाएँ और इससे उपजा अनुभव ही कविता की रचना प्रक्रिया और सर्जनात्मकता की सामग्री है. जीवन से प्रेम, जीवन से मिला दुःख और निराशा सबके साँचे कविता में हैं. फिर वो सामाजिक कविता हो, सामयिक हो, देशप्रेम की कविता हो या प्रेम और सौन्दर्य की. रेलगाड़ी की आवाज़ से कविता बनती है, युवती की पायल की आवाज़ में कविता है. कविता भावनाओं का त्वरित अधिप्रवाह है. अभिव्यक्ति की व्याकुलता का एक रास्ता कविता का सर्जन होना भी है. विचारों की लिखित अभिव्यक्ति ही रचना बनती है.

सर्जन की अदम्य लालसा और आत्मा की अभिव्यक्ति और विस्तार रचनाकार की विशिष्टता होती है. बदलते वक्त के साथ कविता सिर्फ स्वांतः सुखायः नहीं रह गयी है, व्यवसाय भी बन गयी है, फिर वह लेखन मीडिया के लिए हो, कवि-सम्मेलन या विशेष अवसरों के लिए हो. यहाँ भवानी

> "जीवन यात्रा में विचार, आदर्श, प्रेरणाएँ और इससे उपजा अनुभव ही कविता की रचना प्रक्रिया और सर्जनात्मकता की सामग्री है."

प्रसाद मिश्र की कविता, 'जी हाँ हजूर मैं गीत बेचता हूँ' का जिक्र करना तर्कसंगत होगा. बदलते परिवेश में रचनाओं और लेखन प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण भी बदला है. सर्जनात्मक लेखन के लिए अभ्यास की अनिवार्यता है. अभ्यास के द्वारा प्रतिभा में निखार ही रचना प्रक्रिया में परिपूर्णता ला सकता है. इस संदर्भ में श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के विचार रचनात्मकता को विकसित किए जाने का पक्ष प्रस्तुत करते हैं, जो लोग यह समझते हैं कि कवि पैदा होता है, बनाया नहीं जाता, वे इसका वैज्ञानिक तात्पर्य नहीं जानते. काव्य-पाठ, सूक्ष्म-अध्ययन, भाषा-ज्ञान से कवि-संस्कार पैदा होते हैं. भाषा-ज्ञान की बात पर कवि कबीर के बारे में कहा जाता है कि वे लिखना नहीं जानते थे, पर बोलचाल (मातृ-भाषा) की भाषा का ज्ञान होने से उन्होंने उसी में कविता की. शब्द साहित्य का ज्ञान जब आत्मा में परिध्वनित होकर कागज़ पर शब्द का रूप लेता है तो वह सर्जन काव्य कहलाता है.

मन में विचारों के बादल जब घुमड़ते हैं तो सहज ही लेखक के लिए लिखना अनिवार्य हो जाता है, किन्तु निरंतर अभ्यास से अभिव्यक्ति में सुघड़ता और परिपक्वता आती है और इसके लिए पढ़ना और कोई अच्छा विचार जब भी सूझे तो तुरंत उसे लिख ले, नए संवाद सुनें और लिखें, प्रकृति और अपने परिवेश को निहारते हुए जो विचार आयें उसे शीघ्र लिख डालें तथा आपके आसपास के जीवन से कुछ प्रेरणा लेकर सामयिक रचना का सृजन करना जैसी विशेषता ही सर्जनात्मकता है.

कविता संभवतया सबसे प्राचीन विधा है, जिसका पारंपरिक दर्शनीय लक्षण छंदोबद्धता के रूप में आता है. हिन्दी में तुक भी कविता की पहचान बनी रही है, परंतु छंद की उपस्थिति ही स्थायी रही है. भवानी प्रसाद मिश्र का एक कविता संग्रह, जिसका नाम था 'परिवर्तन जिये', में उनकी कविताओं में उस समय की छाप बख़ूबी देखने को मिलती है, जिस वक्त वो लिखी गयी होंगी. एक बार उन्होंने बातों-बातों में कहा था कि इस संग्रह का नाम 'इंकलाब जिंदाबाद' का भाषांतर होना चाहिए. भवानी जी की लिखी पंक्तियाँ, उन्हें अपने शब्दों और दूसरों के शब्दों के माध्यम से आने दो...

वे जो तूफान गा रहे हैं उन्हे गाने दो...

किसी भी कविता की सर्जनात्मक प्रक्रिया में ऐसे क्षण भी आते हैं जब कवि को लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है 'महत्त्व उसका नहीं है' महत्त्व उसका है, जिसका हमारे अंदर साक्षात्कार होता है और यह प्रक्रिया हमें सीप की तरह खोल देती है और और रचना के मोती बाहर आते हैं. यहाँ धर्मवीर भारती जी का एकालाप काव्य 'कनुप्रिया', उनकी लिखी कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आती है,–

> *सच तो यह है की चाहे कोई युद्ध हो या प्यार, महिला दिवस हो या महिला उत्पीड़न की बात, गरीबी हो या भ्रष्टाचार, कविता तो वह है जो सीधे दिल से निकलती है और दिल तक पहुँचती है.*

शब्द, शब्द, शब्द...
मेरे लिए सब अर्थहीन हैं
यदि वे मेरे पास बैठकर
मेरे रूखे कुंतलों में उँगलियाँ उलझाएँ हुए
तुम्हारे कांपते अधरों से नहीं निकलते
शब्द, शब्द, शब्द...

कविता जीवंतता और विविधता का अद्‌भुत दस्तावेज़ है, कविता के सर्जन में नवीनता का अनुसंधान करने के लिए साहित्य की बैचनी को नए संदर्भ और विधा में प्रस्तुत करना सर्जनात्मकता है. कविता दूसरे साहित्यों-रूपों से अपनी भाषा-संरचना में भी भिन्न है. विशेषता यह है कि कई बार तो यह भिन्नता सामान्य भाषा के प्रयोग करने के फलस्वरूप बिना प्रयास के स्वतः ही दिखाई देने ही लगती है. कविता की रचना में अर्थ-विस्तार के लिए रचनाकार प्रतीकात्मक भाषा और बिम्ब का इस्तेमाल करता है और यहीं से कविता में नवीनता का समावेश दिखता है. आज तक हम पत्र-पत्रिकाओं में या नए संग्रहों में कविताओं को गद्य के रूप में देखते आ रहे हैं. जिसमें लय दिखती है. बदलते परिवेश में छोटी कविता का भी चलन हुआ है. जो भाषिक और सांकेतिक दोनों का समन्वय है. जिसमें दो आयाम है- शब्द और अर्थ. छोटी कविता का अर्थ उसकी अंतर्वस्तु का निर्माता है और शब्द उसके रूप और संकेतों का. गीतों को कविता से अलग नहीं किया जा सकता, यदि उन्हीं शब्दों को लय में बिठा कर क्रम और मात्रा के आधार पर ध्वन्यात्मक सरंचना की जाये तो गीत बन जाते हैं जो गुनगुनाए और गाये जाते हैं. और इस प्रयास को करने के लिए नये रचनाकारों को विविधता और अभ्यास के लिए छायावादी कवियों को अवश्य पढ़ना चाहिए. छायावाद के बाद नये प्रयोग के प्रगतिशील गीत नवगीत कहलाने लगे हैं, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है कि 'जब किसी परिनिष्ठित साहित्य का विकास अवरुद्ध हो जाता है तो जड़ता कि स्थिति में कवि और रचनाकार लोक साहित्य से प्रेरणा लेता है', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रामदरश मिश्र और केदारनाथ सिंह आदि कवि इस बात का उदाहरण हैं.

कविता कि रचना में तुकांत कविता का भी प्रयोग हुआ जिसमे पंक्ति के अंत में तुक का प्रयोग हुआ. जैसे प्रसाद के गीत में लिखी कुछ पंक्तियाँ :

प्राण पपीहा के स्वर वाली
बरस रही थी जब हरियाली

कविता के सृजन में प्रवाहपूर्ण लय और गति कैसे समाहित है इसके लिए यहाँ नागार्जुन जी एक कविता कि पंक्तियाँ देखिये :

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास

गीत हों या मुक्तक, छोटी कविता हो या लंबी कविता, कविता में एक सहज आवेग-प्रधान होता है, इसीलिए इसकी रचना-प्रक्रिया भी अलग-अलग मानसिकता की अपेक्षा रखती है. पुराने साँचे में कथन को नये रूप में भरने का आग्रह होता है और इसके विपरीत कथन को शब्दों के छोटे स्वरूप में ढाल कर सारी बात कह देना हाइकु कहलाता है.

हिंदी साहित्य की अनेकानेक विधाओं में 'हाइकु' नव्यतम विधा है. हाइकु मूलतः जापानी साहित्य की प्रमुख विधा है. हाइकु को काव्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की जापान के मात्सुओ बाशो ने. आज हिंदी साहित्य में हाइकु की भरपूर चर्चा हो रही है. हिंदी में हाइकु खूब लिखे जा रहे हैं और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ इनका प्रकाशन कर रहे हैं. निरंतर हाइकु संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं. यदि यह कहा जाए कि वर्तमान की सबसे चर्चित विधा के रूप में हाइकु स्थान लेता जा रहा है तो अत्युक्ति न होगी. हाइकु अनुभूति के चरम क्षण की कविता है. जैसे बड़े पेड़ का छोटा स्वरूप बोंज़ाई है, वैसे ही मेरे हिसाब से हाइकु कविता का बोंज़ाई है. आज हाइकु जापानी साहित्य की सीमाओं को लाँघकर विश्व-साहित्य की निधि बन चुका है. बाशो के अनुसार 'जिस कवि ने जीवन में तीन से पाँच हाइकु रच डाले, वह हाइकु कवि है. जिसने दस हाइकु की रचना कर डाली, वह महाकवि है. हाइकु कविता को भारत में लाने का श्रेय कविवर रवींद्र नाथ ठाकुर को जाता है. हाइकु विद्या में एक नियम का पालन करना होता है कवि को. हाइकु कविता में ५-७-५ अक्षर का अनुशासन रखना जरूरी है. वरना हाइकु अपनी पहचान खोकर एक कविता बन जाता है. हाइकु में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं होना चाहिए अन्यथा भाव बोध नष्ट हो जाएगा.

> *हाइकु कविता की रचना प्रक्रिया में लय, भाषा और तुक के लिए भाषा का भरपूर ज्ञान और शब्दावली पर अच्छी पकड़ और समझ न हो तो, आप कविता के पेड़ को हाइकु के बोंज़ाई का रूप नहीं दे सकते.*

यहाँ कुछ उल्लेखनीय हाइकुकारों के नाम देना चाहूंगी. उनमें प्रमुख हैं - डॉ. सुधा गुप्ता, डॉ. उर्मिला, डॉ. भगवत शरण अग्रवाल, कमल किशोर गोयनका, डॉ. भावना कुँअर, डॉ. कुँअर बेचैन, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', डॉ. सतीशराज पुष्करणा, डॉ. मिथिलेश दीक्षित आदि. उदाहरण के तौर पर कुछ हाइकु देखिये...

डॉ. सुधा गुप्ता - *माघ बेचारा/कोहरे की गठरी/उठाए फिरे.*

कमाल किशोर गोयनका- *पिघल बही/घाटी में कल-कल/पर्वत-कथा.*

डॉ. अनीता कपूर- *बीजो फूल को/रुह की बगिया में/महके रिश्ते.*

रामेश्वर काम्बोज हिमांशु- *प्राण तरसें /मोतियों के बादल/तभी बरसें.*

डॉ. भावना कुँअर- *नन्हें हाथों से/मुझको जब छुआ/जादू-सा हुआ.*

हिंदी में हाइकु कविता पर बहुत कार्य हो रहा है. अनेक हाइकु संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं. हाइकु कविता की रचना प्रक्रिया में लय, भाषा और तुक के लिए भाषा का भरपूर ज्ञान और शब्दावली पर अच्छी पकड़ और समझ न हो तो, आप कविता के पेड़ को हाइकु के बोंज़ाई का रूप नहीं दे सकते.

कविता, यानी तीन अक्षर, कविता पिरामिड भी है और ताजमहल भी. कविता बनाई नहीं जाती, वो तो बन जाती है, जहां विषय नहीं संवेदनशील दिल की जरूरत होती है. कविता का अपना एक आकाश होता है और शब्द उस आकाश के सितारे, संवेदना चाँद और पाठक सूरज होता है. सच तो यह है की चाहे कोई युद्ध हो या प्यार, महिला दिवस हो या महिला उत्पीड़न की बात, गरीबी हो या भ्रष्टाचार, कविता तो वह है जो सीधे दिल से निकलती है और दिल तक पहुँचती है. कविता लिखने में सोचना नहीं पड़ता. कवि प्रवाह के साथ बहता है, जब प्रवाह टूट जाएँ तो मानो प्रकृति थम जाती है. कविता और सृष्टि के सर्जन में कोई बुनियादी फर्क भी नहीं है. इस संदर्भ में नोबल पुरस्काकार विजेता यहूदी साहित्यकार इसाक बेशिविस ने कहा था, 'प्राचीन साहित्य में कवि और सृष्टि-नियंता के बीच मूलभूत अंतर नहीं होता था, कई बार हमारा प्राचीन साहित्य काव्य एक विधान बन जीवन का पाठ-प्रदर्शक का कार्य करता है'. कवि तो एक ऑफेनोमेना (विचित्र सृष्टि) है और कविता की रचना और सर्जन, शब्दों का एक जमावड़ा नहीं, बल्कि जीवन में बिखरे मूर्त और अमूर्त को परिभाषित करता है.■

मधु अरोड़ा

४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.

संपर्क - एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७

ईमेल : shagunji435@gmail.com मोबाईल- ९८३३९५९२१६

बातचीत

प्रख्यात व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी से मधु अरोड़ा की बातचीत

मधु अरोड़ा : आपने लेखन की शुरूआत कैसे की और आपके प्रेरणास्त्रोत कौन रहे ?

ज्ञान चतुर्वेदी : मेरे पिता मध्यप्रदेश के गांव में डॉक्टर थे. मैं उस समय चौथी या पांचवीं कक्षा में था. झांसी के पास एक जगह है भांडेर. वहीं से मेरी पहली रचना छपी यानि कि नौ-दस वर्ष की उम्र के दौरान. किताबें पढ़ता था तो लगता था कि कुछ लिखूं. लिखने की शुरुआत कविता से की. अपने एक भाई और एक दोस्त को मिलाकर एक बालसभा बनाई, जहां रचना सुनानेवाला सिर्फ मैं था और श्रोता वही पके-पकाए भाई और दोस्त. विभिन्न तुक़बन्दियों से बनी मेरी पहली कविता 'दैनिक जागरण' के रविवारीय परिशिष्ट में छपी.

मेरे प्रेरणास्त्रोत रहे मेरे नाना घनश्याम पाण्डे. वे ओरछा के राजकवि थे. मेरे मामाजी बहुत बड़े कवि थे. मेरी माताजी के अनुसार घर में बैठक हुआ करती थी, जहां मैथिलीशरण गुप्त अक्सर कविताएं सुनाया करते थे. मैं जब सातवीं कक्षा में पहुंचा तो पंचवटी पढ़ी और उससे प्रेरणा लेकर बावन छंदों का खंडकाव्य लिखा. तो इस तरह से मेरे लेखन की शुरुआत हुई. जब मैं ग्यारहवीं में था तो दो जासूसी उपन्यास लिख मारे जिन्हें मेरे रिश्तेदार ने अपने नाम से छपवा लिये. वहां मैं कहीं नहीं था. यहां तक कि उस रिश्तेदार ने मुझे बताने की ज़हमत भी नहीं उठाई और वह लेखक बन गया. मैं उम्र के जिस दौर से गुजर रहा था, उसमें मन में तरह-तरह की बेचैनियां उठना स्वाभाविक था पर मैं उस बेचैनी को क्रम नहीं दे पा रहा था. इस दौरान कृश्नचंदर को काफी पढ़ा. मेडिकल में जाने से पहले यानि १९६५ में व्यंग्य लेखक परसाईजी को पढ़ा और इतना अभिभूत हुआ कि तय कर लिया कि व्यंग्य-विधा को ही अपनाना है. मेरे मित्र अंजनी चौहान ग़जब के व्यंग्यकार हैं और उनके आग्रह पर 'धर्मयुग' में पहली बार व्यंग्य रचना भेजी और पहली बार में ही छप गई.

पेशे से डॉक्टरी और दिल से रचनाकार के रूप में कार्य करते समय आप किस मानसिकता से गुजरते हैं ?

डॉक्टरी एक ऐसा प्रोफेशन है जहां जीवन के इतने रंग दिखाई देते हैं कि आंखों के सामने से पर्दे हट जाते हैं. कई बार पति-पत्नी किन्हीं अपरिहार्य कारण से आपस में जो शेयर नहीं कर पाते उसे वे डॉक्टर के साथ खुलकर शेयर कर लेते हैं. बस, शर्त यह है कि डॉक्टर अच्छा हो. अपने प्रोफेशन की वजह से मुझे बहुत ग़हरे तक जिन्दगी देखने को मिली है. हां, यदि आपमें संवेदनशीलता है तो यह व्यवसाय आपको अच्छा लेखक बनाता है. यदि लेखक के तौर पर संवेदनशीलता है तो अंततः मेरा प्रोफेशन और मेरा लेखन एक-दूसरे के पूरक हैं न कि परस्पर विरोधी.

लेकिन डॉक्टर होने के नाते क्या आपको लेखन के लिये समय मिल पाता है ?

जहां तक समय की बात है तो यह तो आपको ख़ुद तय करना है. मैंने सामाजिक प्रतिबद्धताएं कम करके यह समय अपने लेखन को दिया है. एक बात याद रखिये कि जिन्दगी में प्रमुखताएं तय करनी पड़ती हैं. मेरा समय तीन जगह बँटा है- लेखक, प्रोफेशन और परिवार. मेरे लेखन ने डॉक्टर को जनरेट किया है और संवेदनशील होने के नाते मुझे डॉक्टरी प्रोफेशन में फ़ायदा हुआ है. याने संवेदनशील होने से मैं अपने मरीजों के मन की बात जान पाता हूं और उससे सही इलाज़ करने में मदद मिलती है.

'बारामासी' उपन्यास किन स्थितियों में लिखा गया ?

मैं श्रीलाल शुक्ल का राग-दरबारी पढ़कर अभिभूत हो गया. महसूस हुआ कि यह होता है व्यंग्य. मैंने अपने दोस्त

परसाई, जोशी तथा त्यागी की व्यंग्यत्रयी के बाद की पीढ़ी के बहुचर्चित तथा बहुप्रशंसित व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी का जन्म २ अगस्त, १९५२ को उत्तरप्रदेश के झांसी जिले के मऊरानीपुर कस्बे में हुआ. मेडिकल कॉलेज, रीवा से एम.बी.बी.एस. तथा एम.डी. की डिग्री लेने के पश्चात आपने कार्डियोलॉजी का विशेष प्रशिक्षण लिया. अपने प्रथम व्यंग्य संग्रह 'प्रेत कथा' से चर्चा में आए. उसके बाद अपने अन्य चार व्यंग्य संग्रहों, दंगे में मुर्गा, खामोश नंगे हमाम में हैं, मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं तथा बिसात बिछी है, के साथ वे निरंतर पाठकों तथा आलोचकों की चर्चा के केंद्र में रहे हैं. उनके उपन्यास 'बारामासी' को बीसवीं सदी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में गिना गया.

सम्प्रति - कस्तूरबा अस्पताल, भोपाल में मेडिकल स्पेशलिस्ट तथा कार्डियोलॉजिस्ट के रूप में कार्यरत.

> प्रकाशकों की शिकायत कि पुस्तकें नहीं बिक रहीं, हिन्दी पत्रिकाएं कोई नहीं ख़रीद रहा. एक ही किताब पर पांच-पांच आदमी लिख रहे हैं, गुटबाजी के तहत एक किताब, एक कहानी चर्चित हो रही है. तो आप किसको धोखा दे रहे हैं?

अंजनी चौहान के साथ मिलकर व्यंग्य उपन्यास लिखने का निर्णय लिया. अपने प्रोफेशन याने डॉक्टर पर उपन्यास लिखने का सोचा. मैंने क़रीब अस्सी पृष्ठ लिखे और अंजनी ने छः पृष्ठ लिखकर लिखना बन्द कर दिया. मैंने १९९० में दोबारा उपन्यास लिखने का सोचा. यह विचार सन् १९९४ में 'नरक़-यात्रा' के रूप में फलीभूत हुआ लेकिन मुझे मज़ा नहीं आया. उस समय क़रीब-क़रीब सब पत्रिकाएं बन्द हो गई थीं. अख़बारों के कॉलम में कुछ नया करने की गुंज़ाइश नहीं थी. मैं लंबी व्यंग्य- रचनाएं लिखने के लिये बदनाम था. धर्मवीर भारतीजी द्वारा मांगी गई रचनाओं की शब्द-सीमा एक हज़ार होती थी, परन्तु मैं दावे से कह सकता हूं कि उन्होंने मेरी रचनाओं को कभी नहीं काटा.

हां, जहां तक बारामासी की बात है तो मेरे अनुसार जीवन बहुत कुछ है. अन्तर्वैयक्तिक, पारिवारिक घटनाओं पर हिन्दी व्यंग्य ने कभी बात ही नहीं की. हिन्दी व्यंग्य में सिवाय प्रेमी-प्रेमिकाओं या पड़ोसिनों पर व्यंग्य करने के सिवाय कुछ नहीं किया. यह सब देखकर मेरे मन में यह सवाल उठा कि क्या यह व्यंग्य की कमज़ोरी है या फिर व्यंग्यकार की? तो जब ये सारी चीज़ें एक जगह मिल गईं तो 'बारामासी' का जन्म हुआ. मुझे इस बात का संतोष है कि यह उपन्यास व्यंग्य को एक ऐसी दिशा में ले गया जहां हिन्दी का व्यंग्य गया ही नहीं था. बुन्देलखंड की प्रतिदिन की जिन्दगी में व्यंग्य है, वहां हर व्यक्ति वक्रोक्ति में ही बात करता है. सीधी बात करे तो वह बुन्देलखंडी है ही नहीं. तो बुन्देलखंड का कर्ज़ भी चुकाना था, इसलिये बुन्देलखंड को लिया और इस तरह यह लंबी रचना लिखी गई.

आजकल हिन्दी साहित्य में चल रहे विभिन्न विमर्शों, जैसे स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श आदि की क्या उपादेयता है?

मैं मूल रूप से यह मानता हूं कि स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श ये दोनों विमर्श बहुत ज़रूरी हैं. ये असली मुद्दे हैं, जिन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिये लेकिन इन्हें जिस रूप में और जिस तरीके से उछाला गया है, इन विमर्शों की स्थिति ख़राब हो सकती है. हिन्दी के दिग्गज़ों के बीच ये जिस रूप में आये हैं, उससे ये विचार अपनी पटरी से उतर चुके हैं. अब ये विमर्श विमर्श न रहकर स्वयं को स्थापित करने के लिये, स्वयं के सर्क्यूलेशन के लिये, स्वयं को चर्चा में रखने के लिये, राजनीति चलाने के लिये और समग्र रूप से साहित्य में एक-दूसरे से हिसाब बराबर करने के लिये बन गये हैं और इस्तेमाल में लाये जा रहे हैं. स्त्री- विमर्श जबसे शुरू हुआ है उससे पहले भी मैंने कई लेखिकाओं को पढ़ा है, वे मेरी प्रिय लेखिकाएं हैं. उन्होंने स्त्रियों के नज़रिये लिखा है. अच्छी-बुरी कहानियां लिखी गई हैं. मूल धारा जो स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श की है वह राजनीति की गंदी धारा हो चुकी है. लेकिन इनके बीच में इन धाराओं में बड़े जेन्यूइन तौर पर विश्वास करने वाले लोग और इन विमर्शों पर सुधा अरोड़ा का कथादेश पत्रिका में लंबा धारावाहिक कालम चला था, उन्होंने इन धाराओं पर अच्छा काम किया था. लेकिन जो ढढ्ढड्ढढ्ढढ्ढदृदद्य पर आये, उनके लेख़न में वह दर्द नहीं है, ऐसा कुछ भी नहीं दिखाई देता जिससे ऐसा लगे कि इन लोगों के लिये ये लोग कुछ अच्छा सोच रहे हैं, कुछ अच्छा कर रहे हैं पर इन लोगों ने इन धाराओं पर कब्ज़ा कर लिया है. यही कारण है कि स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श ये हमारे समय के महत्वपूर्ण विमर्श हैं और हो सकते थे पर वे सही रूप में उस तक पहुंच ही नहीं पाये.

हिन्दी साहित्य में चल रही गुटबाजी और उससे हिन्दी साहित्य को हो रहे नुकसान के विषय में आप क्या सोचते हैं?

दरअसल हर जगह की गुटबाजी, हर तरह की गुटबाजी सबको ले डूबी है तो हिन्दी साहित्य कैसे अछूता रह सकता है? प्रकाशकों की शिकायत कि पुस्तकें नहीं बिक रहीं, हिन्दी पत्रिकाएं कोई नहीं ख़रीद रहा. एक ही किताब पर पांच-पांच आदमी लिख रहे हैं, गुटबाजी के तहत एक किताब, एक कहानी चर्चित हो रही है. तो आप किसको धोखा दे रहे हैं? आप किसी व्यक्ति विशेष, पुस्तक विशेष को कब तक एक्सपोज़ करेंगे? हिन्दी पाठक के सामने आप नंगे हो चुके हैं. आपको एक बात बताता हूं. मेरे एक डॉक्टर मित्र एक चर्चित किताब ख़रीदकर लाये. उसको पढ़ने के बाद उनकी प्रतिक्रिया थी कि किताब की ग़लत चर्चा हुई. वास्तव में यह किताब ख़राब है और पठनीय नहीं है. तो इस तरह की गुटबाजी की वजह से आप जेन्यूइन/असली पाठक खोते हैं. उसका विश्वास ख़त्म करते हैं. आप देखिये, मैं डॉक्टर हूं और गुटबन्दी के तहत मरीज़ को गुट विशेष के डॉक्टर के पास भेजता हूं जो अच्छा नहीं है तो मरीज़ मरेगा ही. तो इस गुटबन्दी की वजह से आप कहानी, कविता सभी से पाठक निकाल देंगे. आज तो आलम यह है कि सरकार पैसा दे रही है, पुरस्कार दिये जा रहे हैं वहां भी गुटबाजी है. आज तो आपकी मार अंतर्राष्ट्रीय हो गई है. आप सुखद भ्रम में रहते हैं कि हम सफल हो रहे हैं. इस

चक्कर में हिन्दी साहित्य ख़त्म हो रहा है. गुटबन्दी के चक्कर में न तो जेन्यूइन लेख़क सामने आ पाते हैं और न जेन्यूइन किताब सामने आ पाती है और यही प्रवृत्तियां आगे चलकर हिन्दी साहित्य को ख़त्म करने की कोशिश करेंगी. याद रखिये, गुटबन्दी विधा, खेल, सिनेमा कहीं भी ख़तरनाक है. यह मार्केटिंग का हिस्सा तो हो सकता है पर दरअसल यह किसी विधा को ख़त्म करने का तरीका है और अनजाने में साहित्य को ख़त्म कर रहे हैं. जब आप साहित्य को कचरा कर देंगे तो ख़ुद को भी तो ख़त्म कर रहे हैं.

प्रवासी साहित्य को लेकर आप क्या सोचते हैं?

ईमानदारी से कहूं तो मैंने प्रवासी साहित्य ख़ास पढ़ा नहीं है. कुछ समय पहले प्रवासियों पर रचना समय ने विशेषांक निकाला था जिसमें कुछ अच्छी अच्छी रचनाएं थीं. मुझे उन पर कुछ लिखना था. समयबद्धता के कारण सारी रचनाएं पढ़ नहीं पाया था पर जो पढ़ पाया उसमें forefront पर यूके और यूएई थे. उन कहानियों में मुझे वे कहानियां पसन्द आयीं जो वहां के परिवेश की थीं. पर अधिक़तर नास्टेल्जिया की कहानियां थीं. पुरानी पीढ़ी जो देश छोड़कर आई थी और अभी तक अपने पुराने देश की यादों में जी रही है, उन स्मृतियों की कहनियां थी. लंदन में तेजेन्द्र ने हिन्दी का जो आंदोलन छेड़ा है उससे एक माहौल बनेगा. अब यहां के जो लेख़क वहां बस गये हैं तो वहां के समाज की विसंगतियों को लेकर उनको ही लिखना है तभी वह साहित्य यहां तक पहुंचेगा. मान लाजिये, यदि मैं लंदन में रहता हूं तो वहां रहकर लिखना मेरा अलग लेखन होगा. उसका फ्लेवर अलग होगा. भारत के हिन्दी पाठकों तक वहां का समाज और हमारा जो समाज वहां बसा है, उनके सपने, उनकी हिन्दी कहानियों में आना ज़रूरी है. प्रवासी कहानियां कला के तौर पर कच्ची होने के बावज़ूद हिन्दी जगत के लिये महत्वपूर्ण हैं. जब वे वहां के माहौल को लेकर कहानियां लिखते हैं तो हमें एक नये संसार से परिचित कराते हैं और वहां उनका भोगा हुआ यथार्थ सामने आयेगा. अचला शर्मा की कहानी चौथी ऋतु बहुत ही अच्छी है. वृद्धों के अकेलेपन की कहानी, अपने-अपने टापुओं पर अपने आख़िरी दिन का इन्तज़ार करती कहानी बहुत ही मार्मिक और वहां के माहौल पर लिखी गई है. तेजेन्द्र की पासपोर्ट का रंग कहानी बहुत बेहतरीन कहानी है जो दोहरी नागरिकता पर आधारित है. तो प्रवासी साहित्य हिन्दी के लिये बहुत ज़रूरी है. तेजेन्द्र वहां जो काम कर रहे हैं वह बहुत महत्वपूर्ण है. प्रवासी साहित्य में मेच्योर लेखन है, कंप्लीट कहानियां हैं, आपको उन कहानियों के कला पक्ष से शिकायत नहीं हो सकती. अभी हाल में कथा-यूके ने डीएवी गर्ल्स कालेज के साथ मिलकर जो कार्यक्रम किया, उससे माहौल बना. प्रवासी लेखक शामिल हुए और उनकी रचनाओं पर बात हुई. वहां के लोगों को एक्सपोज़ किया कि विदेशों में कितना काम हो रहा है और इस तरह लोगों में उनके प्रति जिज्ञासा जागी.

> *हिन्दी में दो तरह के लेखक हैं- एक वे जो अपना बायोडाटा बनाते हैं पुरस्कारों, सम्मानों एवं ऐसी ही जुगाड़बन्दियों के जरिये. दूसरे वे लेखक हैं जो बस रचना कर्म करते हैं.*

आपको 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' प्राप्त हुआ तो बड़े पुरस्कारों की तुलना में इस सम्मान की भिन्नता और उपादेयता के बारे में आप क्या सोचते हैं?

जब लंदन में यह सम्मान मिला तो मैंने बड़े मन से यह स्टेटमेंट दिया था कि हिन्दी में दो तरह के लेखक हैं- एक वे जो अपना बायोडाटा बनाते हैं पुरस्कारों, सम्मानों एवं ऐसी ही जुगाड़बन्दियों के जरिये. दूसरे वे लेखक हैं जो बस रचना कर्म करते हैं. हिन्दी में प्रायः बड़े सम्मानों का एक तिलिस्मी किला बन गया है जिसे तोड़ने के लिये भूतनाथ जैसी ऐयारी और तिक़ड़मोंवाली चाभी हो और आपके पास षड़यंत्रों के लिये काफी समय हो तो आप इसमें घुस सकते हैं. इस प्रक्रिया में आप धीरे-धीरे लेख़न से दूर होते चले जाते हैं. मेरा अपना विश्वास है कि ख़ूब लिखिये, वही सबसे बड़ा सम्मान है. मेरा अनुभव है कि अच्छे लेख़न को लंबे समय तक इग्नोर नहीं किया जा सकता. पुरस्कार, सम्मान प्रासंगिक हैं या नहीं, यह मूल मुद्दा नहीं है और लेख़न में तो क़तई नहीं.

जहां तक 'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान' की बात है तो इस सम्मान ने हिन्दी जगत में एक विश्वसनीयतावाला स्थान प्राप्त कर लिया है. इसका कारण शायद चयन प्रक्रिया को पारदर्शी बनाये रखना और तिलिस्मी किला न बनने देने का संकल्प है. इसके आयोजकों के इसी संकल्प ने इस सम्मान को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाया है. पहले दो लेखक- श्रीमती चित्रा मुद्‌गल एवं संजीव के लेखन में क़द की ऊंचाई और उनकी कृतियां इतनी विश्वसनीय और सम्माननीय प्रतिष्ठा पा चुकी थीं कि इंदु शर्मा कथा सम्मान देनेवाले आयोजकों ने इन कृतियों का चुनाव करके कहीं संदेश दिया था कि उनके निकट इस सम्मान को देनेवाले का मानदंड केवल गुणवत्ता ही होगी, कोई अन्य बात नहीं. ■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

प्रतिभा और मेधा

एकलव्य का सपना था कृति धनुर्धर होने का. यह भील बालक के लिए असामान्य सपना था. तत्कालीन व्यवस्था के लिए एक चुनौती, एकलव्य को द्रोणाचार्य ने शिक्षा देने से इनकार कर दिया था. पर वह हताश नहीं हुआ. उसने गुरु के स्थान पर द्रोण की एक माटी की मूरत बना ली और कठिन स्वाध्याय से कुशलता और दक्षता प्राप्त कर ली. द्रोण के राजकुमार शिष्यों से अधिक दक्ष एवं कुशल होने के संकेत देने लगा तो द्रोण को अपने निहित स्वार्थों के लिए हानिकारक होने की सम्भावना दिखने लगी और उन्होंने एकलव्य को गुरु-ऋण की याद दिलाई.

एकलव्य ने समझते हुए भी कि द्रोण द्वारा माँगी गई गुरु-दक्षिणा उसे अक्षम बनाने के उद्देश्य से प्रेरित है, इनकार नहीं किया. इसकी क्या युक्ति हो सकती है? एकलव्य भील संप्रदाय का सदस्य था और इसलिए द्रोण (जो व्यवस्था के अंग थे) के लिए अपांक्तेय था. एकलव्य ने द्रोण के गुरु-ऋण का दावा स्वीकार किया, व्यवस्था के विधान-दण्ड को मानने के पीछे व्यवस्था से स्वीकृति (legitimacy) प्राप्त होने का लोभ ही रहा होगा. जब भी कोई व्यवस्था के वैषम्य के विरुद्ध सपने देखता है, सपनों को साकार करने में सक्षम दिखने लगता है, तो व्यवस्था (द्रोण) ऋण की बात बताकर उसे एकलव्य की भाँति अक्षम बनाने का कौशल करती है.

ब्रह्माण्ड में व्यवस्था है, छन्द है, लय है, साथ ही बारम्बारता भी है. पृथ्वी सूरज के गिर्द एक निश्चित काल-खण्ड में एक चक्कर लगाती है तथा अपनी धूरी पर एक निश्चित काल-खण्ड में एक पूरा चक्कर लगाती है.

वितरण के सिद्धान्त से यह समझ बनती है कि प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले सामान्य समुदायों में बहुसंख्यक लोग औसत हुआ करते हैं. प्रतिभाशाली और विकलांग - शारीरिक तथा मानसिक – का अनुपात किसी भी समुदाय में काफी कम हुआ करता है. इस तथ्य से यह स्थिति स्पष्ट होती है कि परिवेश औसत सदस्यों के लिए अधिक अनुकूल होता है, बनिस्पत प्रतिभाशाली तथा विकलाङ्गों के. समुदाय के प्रतिभाशाली सदस्यों को भी विकलांगों ही के समान प्रतिकूलता से जूझना पड़ता है. अतएव अपने को कायम रखने के लिए प्रतिभाशालियों को विकलाङ्गों की ही भाँति तत्पर रहने की जरूरत होती है. प्रतिभाशालियों के औसत या विकलांग की परिणति प्राप्त करने का खतरा वास्तविक हुआ करता है. समुदाय के प्रतिभाशाली सदस्य मेधावी हो जाने पर परिवेश के संसाधनों को उपयोग करने में अपनी मेधा के कारण अधिक प्रभावी और सक्षम हो सकते हैं. विकलाङ्ग सदस्य अतिरिक्त प्रयास के द्वारा औसत तथा अन्य सदस्यों के

> *"अपने को कायम रखने के लिए प्रतिभाशालियों को विकलाङ्गों की ही भाँति तत्पर रहने की जरूरत होती है. प्रतिभाशालियों के औसत या विकलांग की परिणति प्राप्त करने का खतरा वास्तविक हुआ करता है."*

उन्नत स्तर के संगठन के स्तर को हासिल कर सकते हैं.

ऊर्जा संगठित स्थिति को उन्नत करती है, जब कि Entropy इसको बिखराव की ओर प्रवृत करता है. ऊर्जा ब्रह्माण्ड की साम्राज्ञी है और एण्ट्रॉपी उसका साया. जहाँ भी ऊर्जा रहती है, बिना किसी व्यतिरेक के बिखराव की प्रवृत्ति साथ रहती ही है. मेधा संगठित स्थिति होती है, इसलिए बिखराव के प्रति अधिक उन्मुख. हम अपनी दैनन्दिन दिनचर्या में अनुभव किया करते हैं कि कुछ लम्बे काल-खण्ड के लिए संगठित स्थिति बनाए रखने में प्रयास तथा सजगता की आवश्यकता पड़ा करती है. बिखराव सहज प्रक्रिया हुआ करती है. प्रतिभाशाली होना अधिक ऊर्जा-युक्त होना है, इसलिए इनमें बिखराव की प्रवृत्ति भी अपेक्षाकृत अधिक हुआ करती है. बिखराव के प्रति अपनी उन्मुखता की सहज रुझान के सम्बन्ध में इन्हें सावधान और सतर्क रहने की निरन्तर आवश्यकता है, अन्यथा साम्राज्ञी का साया लम्बा होता जायेगा और अँधेरा सर्वग्रासी हो जाएगा. विकलांग लोग ऊर्जा रहित क्षेत्र में हुआ करते हैं, उन्हें ऊर्जा की, बेहतर संगठन की आवश्यकता होती है अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए. निष्कर्ष स्वरूप कहा जाना चाहिए कि प्रतिभाशालियों को अपनी क्षमता को बिखरने से बचाने के लिए निरन्तर सतर्क रहने का विकल्प नहीं होता. तभी वे औसत या विकलांग होने से अपना बचाव कर सकते हैं, विकलांग अपने को ऊर्जायुक्त, संगठित कर और रख कर औसत के समकक्ष तथा उनसे बेहतर भी कर पाने का लक्ष्य पा सकते हैं.

प्रतिभा (Talent) ऊर्जा हुआ करती है. बिखराव की प्रवृत्ति प्रतिभा के साथ समानुपातिक रूप से रहा करती है. प्रतिभा गंगा है, जिसे धराधाम पर लाने के लिए भगीरथ को तपस्या करने की जरूरत होती है. प्रतिभा को व्यवस्थित और संगठित कर लेने पर वह मेधा (Merit) बनती है. फलस्वरूप बिखराव का संकट कम होता है. प्रतिभा मेधा नहीं बन पाती तो अपने आपमें कोई महत्व नहीं रखती. वास्तविकता तो यह है कि बिखरी हुई प्रतिभाओं से बढ़कर सामान्य कुछ भी नहीं है.

केवल प्रतिभा ही मेधा नहीं हुआ करती. कठिन परिश्रम, अनन्य एकाग्रता भी एक प्रकार की प्रतिभा हुआ करती है. ज्ञान अर्जित करने के लिए परिश्रम का कोई विकल्प नहीं होता. अमानुषिक परिश्रम कर पाना भी दैवी क्षमता हुआ करती है. विधाता द्वारा दी गई क्षमता का पूरा उपयोग नहीं करना उनकी करुणा की अवहेलना करना है. आलस्य को, बहाने को, चंचलता को प्रश्रय देनेवाले हमेशा ही समय और ईश्वरीय करुणा का अपचय करते हैं. प्रतिभाशाली लोग किसी भी कारण से आलस्य को प्रश्रय नहीं दिया करते, वे अपने आपको चाबुक मारमार कर दौड़ाते रहते हैं. ■

रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

१९ मार्च १९४९ को बेहट जिला सहारनपुर में जन्म. शिक्षा : एम.ए., बी.एड., प्रकाशित रचनाएँ : कविता संग्रह : 'माटी, पानी और हवा', 'अंजुरी भर आसीस', 'कुकड़ूं कूं', 'हुआ सवेरा', लघु उपन्यास : 'धरती के आंसू', 'दीपा', 'दूसरा सवेरा', लघुकथा-संग्रह : 'असभ्य नगर' अनेक संकलनों में लघुकथाएँ संकलित तथा गुजराती, पंजाबी, उर्दू एवं नेपाली में अनूदित. संप्रति : प्राचार्य, केन्द्रीय विद्यालय हज़रतपुर, फ़िरोज़ाबाद से अवकाश प्राप्त करने के बाद स्वतंत्र लेखन.

संपर्क : rdkamboj@gmail.com

लघुकथा

नवजन्मा

जिलेसिंह शहर से वापस आया तो आँगन में पैर रखते ही उसे अजीब-सा सन्नाटा पसरा हुआ लगा.

दादी ने ऐनक नाक पर ठीक से रखते हुई उदासी-भरी आवाज़ में कहा -'जिल्ले! तेरा तो इभी से सिर बँध ग्या रे. छोरी हुई है!'

जिलेसिंह के माथे पर एक लकीर खिंच गई.

'भाई लड़का होता तो ज़्यादा नेग मिलता. मेरा भी नेग मारा गया.' बहन फूलमती ने मुँह बनाया- 'पहला जापा था. सोचा था खूब मिलेगा.'

जिले सिंह का चेहरा तन गया. माथे पर दूसरी लकीर भी उभर आई.

माँ कुछ नहीं बोली. उसकी चुप्पी और अधिक बोल रही थी. जैसे कह रही हो- जूतियाँ घिस जाएँगी ढंग का लड़का ढूँढ़ने में. पता नहीं किस निकम्मे के पैरों में पगड़ी रखनी पड़ जाए.

तमतमाया जिलेसिंह मनदीप के कमरे में घुसा. बाहर की आवाज़ें वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं. नवजात कन्या की आँखें मुँदी हुई थीं. पति को सामने देखकर मनदीप ने डबडबाई आँखें पोंछते हुए अपना मुँह अपराध भाव से दूसरी ओर घुमा लिया.

जिलेसिंह तीर की तरह लौटा और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चौपाल वाली गली की ओर मुड़ गया.

'सुबह का गया अभी शहर से आया था. तुम दोनों को क्या ज़रूरत थी इस तरह बोलने?' माँ भुनभनाई. घर में और भी गहरी चुप्पी छा गई.

कुछ ही देर में जिलेसिंह लौट आया. उसके पीछे-पीछे सन्तु ढोलिया गले में ढोल लटकाए आँगन के बीचों-बीच आ खड़ा हुआ.

'बजाओ!' जिलेसिंह की भारी भरकम आवाज़ गूँजी.

तिड़क-तिड़-तिड़-तिड़ धुम्म, तिड़क धुम्म! ढोल बजा.

मुहल्ले वाले एक साथ चौंक पड़े. जिलेसिंह ने अल्मारी से अपनी तुर्रेदार पगड़ी निकाली, जिसे वह शादी-ब्याह या बैसाखी जैसे मौके पर ही बाँधता था. ढोल की गिड़गिड़ी पर उसने पूरे जोश से नाचते हुए आँगन के तीन-चार चक्कर काटे. जेब से सौ का नोट निकाला और मनदीप के कमरे में जाकर नवजात के ऊपर वार-फेर की और उसकी अधमुँदी आँखों को हलके-से छुआ. पति के चेहरे पर नज़र पड़ते ही मनदीप की आँखों के सामने जैसे उजाले का सैलाब उमड़ पड़ा हो. उसने छलकते आँसुओं को इस बार नहीं पोंछा.

बाहर आकर जिलेसिंह ने वह नोट सन्तु ढोलिया को थमा दिया.

सन्तु और जोर से ढोल बजाने लगा -तिड़-तिड़-तिड़ तिड़क-धुम्म, तिड़क धुम्म! तिड़क धुम्म! तिड़क धुम्म!! ■

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में एम.एस-सी, तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधियाँ अर्जित. विज्ञान पर एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित. हिन्दी में शैक्षिक ई-सामग्री के विकास के लिए वेबसाइट http://ehindi.hbcse.tifr.res.in संचालित. परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा 'राजभाषा भूषण पुरस्कार' तथा महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा 'होमी जहाँगीर भाभा पुरस्कार' से सम्मानित. सम्प्रति : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (टी.आई.एफ.आर.) में वैज्ञानिक पद 'रीडर (एफ़)' पर कार्यरत.

सम्पर्क : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुंबई-४०००८८

ईमेल : kkm@hbcse.tifr.res.in

भारतीय ऋषि परम्परा के महान रसायन विज्ञानी

आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय

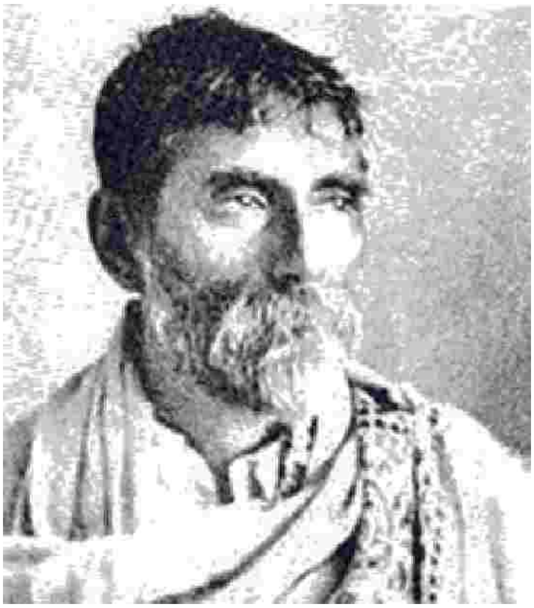

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय भारत में रसायन विज्ञान के जनक माने जाते हैं. वे एक सादगीपसंद तथा देशभक्त वैज्ञानिक थे जिन्होंने रसायन प्रौद्योगिकी में देश के स्वावलंबन के लिए अप्रतिम प्रयास किए. आचार्य राय भारत में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक पुनर्जागरण के स्तम्भ थे. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में आजादी की लड़ाई के साथ-साथ देश में ज्ञान-विज्ञान की भी एक नई लहर उठी थी. इस दौरान अनेक मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने जन्म लिया. इसमे जगदीश चंद्र बसु, प्रफुल्ल चंद्र राय, श्रीनिवास रामानुजन और चंद्रशेखर वेंकटरामन जैसे महान वैज्ञानिकों का नाम लिया जा सकता है. इन्होंने पराधीनता के बावजूद अपनी लगन तथा निष्ठा से विज्ञान में उस ऊंचाई को छुआ जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी. ये आधुनिक भारत की पहली पीढ़ी के वैज्ञानिक थे जिनके कार्यों और आदर्शों से भारतीय विज्ञान को एक नई दिशा मिली. इन वैज्ञानिकों में आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय का नाम गर्व से लिया जाता है. वे वैज्ञानिक होने के साथ-साथ एक महान देशभक्त भी थे. सही मायनों में वे भारतीय ऋषि परम्परा के प्रतीक थे.

इनका जन्म २ अगस्त, १८६१ ई. में जैसोर जिले के ररौली गांव में हुआ था. यह स्थान अब बांगलादेश में है तथा खुल्ना जिले के नाम से जाना जाता है. उनके पिता हरिश्चंद्र राय इस गाँव के प्रतिष्ठित जमींदार थे. वे प्रगतिशील तथा खुले दिमाग के व्यक्ति थे. आचार्य राय की माँ भुवनमोहिनी देवी भी एक प्रखर चेतना-सम्पन्न महिला थीं. जाहिर है, प्रफुल्ल पर इनका प्रभाव पड़ा था.

आचार्य राय के पिता का अपना पुस्तकालय था. उनका झुकाव अंग्रेजी शिक्षा की ओर था. इसलिए उन्होंने अपने गांव में एक मॉडल स्कूल की स्थापना की थी जिसमें प्रफुल्ल ने प्राथमिक शिक्षा पायी. बाद में उन्होंने अल्बर्ट स्कूल में दाखिला लिया. सन १८७१ में प्रफुल्ल ने अपने बड़े भाई नलिनीकांत के साथ डेविड हेयर के स्कूल में प्रवेश लिया. डेविड हेयर खुद शिक्षित नहीं थे परंतु उन्होंने बंगाल में पश्चिमी शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. राय ने अपनी आत्मकथा में जिक्र किया है कि किस तरह हेयर स्कूल में उनके सहपाठी उनकी खिल्ली उड़ाया करते थे. छात्र उन्हें 'बंगाल' उपनाम से चिढ़ाते थे. राय उस स्कूल में ज़्यादा दिन नहीं पढ़ सके. बीमारी के कारण उन्हें न सिर्फ स्कूल छोड़ना पड़ा बल्कि नियमित पढ़ाई भी छोड़ देनी पड़ी. लेकिन उस दौरान उन्होंने अंग्रेज़ी-क्लासिक्स और बांग्ला की ऐतिहासिक और साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन किया.

आचार्य राय की अध्ययन में बड़ी रुचि थी. वे बारह साल की उम्र में ही चार बजे सुबह उठ जाते थे. पाठ्य-पुस्तकों के अलावा वे इतिहास तथा जीवनियों में अधिक रुचि रखते थे. 'चैम्बर्स बायोग्राफी' उन्होंने कई बार पढ़ी थी. वे सर डब्ल्यू.एम. जोन्स, जॉन लेडेन और उनकी भाषायी उपलब्धियों तथा फ्रैंकलिन के जीवन से काफी प्रभावित थे. सन् १८७९ में उन्होंने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की. फिर आगे की पढ़ाई मेट्रोपोलिटन कॉलेज (अब विद्यासागर कॉलेज) में शुरू की. यह एक राष्ट्रीय शिक्षण संस्था थी तथा यहाँ फीस भी कम थी. परंतु वहाँ दाखिला उन्होंने सिर्फ आर्थिक कारणों से नहीं लिया था बल्कि उस समय पूजनीय माने जाने वाले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी वहां अंग्रेज़ी गद्य के प्रोफेसर थे और प्रशांत कुमार लाहिड़ी वहाँ अंग्रेज़ी कविता पढ़ाते थे.

उस समय रसायन विज्ञान ग्यारहवीं कक्षा का एक अनिवार्य विषय था. वहीं पर पेडलर महाशय की उत्कृष्ठ प्रयोगात्मक क्षमता देखकर धीरे-धीरे वे रसायन विज्ञान की ओर उन्मुख हुए. अब प्रफुल्ल चंद्र राय ने रसायन विज्ञान को अपना मुख्य विषय बनाने का निर्णय कर लिया था. पास में प्रेसिडेंसी कॉलेज में विज्ञान की पढ़ाई का अच्छा इंतज़ाम था इसलिए वह बाहरी छात्र के रूप में वहाँ भी जाने लगे.

उसी समय प्रफुल्ल चंद्र के मन में गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति के इम्तहान में बैठने की इच्छा जगी. यह इम्तहान लंदन विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा के बराबर माना जाता था. इस इम्तहान में लैटिन या ग्रीक तथा जर्मन भाषाओं का ज्ञान होना जरूरी था. अपने भाषा-ज्ञान को आज़माने का प्रफुल्ल के लिए यह अच्छा अवसर था. इस इम्तहान में सफल होने पर उन्हें छात्रवृत्ति मिल जाती और आगे के अध्ययन के लिए वह इंग्लैंड जा सकते थे. आखिर अपनी लगन एवं मेहनत से वह इस परीक्षा में कामयाब रहे. इस प्रकार वे इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए. नया देश, नए रीति-रिवाज़ पर प्रफुल्लचंद्र इन सबसे ज़रा भी चिंतित नहीं हुए. अंग्रेजों की नकल उतारना उन्हें पसंद नहीं था, उन्होंने चोगा और चपकन बनवाई और इसी वेश में इंग्लैंड गए. उस समय वहाँ लंदन में जगदीशचंद्र बसु अध्ययन कर रहे थे. राय और बसु में परस्पर मित्रता हो गई.

प्रफुल्ल चंद्र राय को एडिनबरा विश्वविद्यालय में अध्ययन करना था जो विज्ञान की पढ़ाई के लिए मशहूर था. वर्ष १८८५ में उन्होंने पीएच.डी. का शोधकार्य पूरा किया. तदनंतर १८८७ में 'ताम्र और मैग्नीशियम समूह के कॉन्जुगेटेड सल्फेटों' के बारे में किए गए उनके कार्यों को मान्यता देते हुए एडिनबरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.एस-सी. की उपाधि प्रदान की. उनके उत्कृष्ट कार्यों के लिए उन्हें एक साल की अध्येतावृत्ति मिली तथा एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन सोसायटी ने उनको अपना उपाध्यक्ष चुना. तदोपरान्त वे छह साल बाद भारत वापस आए. उनका उद्देश्य रसायन विज्ञान में अपना शोधकार्य जारी रखना था. अगस्त १८८८ से जून १८८९ के बीच लगभग एक साल तक डॉ. राय को नौकरी नहीं मिली थी. यह समय उन्होंने कलकत्ते में बसु के घर पर व्यतीत किया. इस दौरान खाली रहने पर उन्होंने रसायनविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान की पुस्तकों का अध्ययन किया और रॉक्सबोर्ग की 'फ्लोरा इंडिका' और हॉकर की 'जेनेरा प्लाण्टेरम' की सहायता से कई पेड़-पौधों की प्रजातियों को पहचाना एवं संग्रहीत किया. उन्हें जुलाई १८८९ में प्रेसिडेंसी कॉलेज में २५० रुपये मासिक वेतन पर रसायन विज्ञान के सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया. यहीं से उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ. सन् १९११ में वे प्रोफेसर बने. उसी वर्ष ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'नाइट' की उपाधि से सम्मानित किया. सन् १९१६ में वे प्रेसिडेंसी कॉलेज से रसायन विज्ञान के विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत हुए. फिर १९१६ से १९३६ तक उसी जगह एमेरिटस प्रोफेसर के तौर पर कार्यरत रहे. सन् १९३३ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा रेक्टर पं. मदन मोहन मालवीय ने आचार्य राय को डी.एस-सी. की मानद उपाधि से विभूषित किया. वे देश विदेश के अनेक विज्ञान संगठनों के सदस्य रहे.

एक दिन आचार्य राय अपनी प्रयोगशाला में पारे और तेजाब से प्रयोग कर रहे थे. इससे मर्क्यूरस नाइट्रेट नामक पदार्थ बनता है. इस प्रयोग के समय डॉ. राय को कुछ पीले-पीले क्रिस्टल दिखाई दिए. वह पदार्थ लवण भी था तथा नाइट्रेट भी. यह खोज बड़े महत्त्व की थी. वैज्ञानिकों को तब इस पदार्थ तथा उसके गुणधर्मों के बारे में पता नहीं था. उनकी खोज प्रकाशित हुई तो दुनिया भर में डॉ. राय को ख्याति मिली. उन्होंने एक और महत्वपूर्ण कार्य किया था. वह था अमोनियम नाइट्राइट का उसके विशुद्ध रूप में संश्लेषण. इसके पहले माना जाता था कि अमोनियम नाइट्राइट का तेजी से तापीय विघटन होता है तथा यह अस्थायी होता है. राय ने अपने इन निष्कर्षों को फिर से लंदन की केमिकल सोसायटी की बैठक में प्रस्तुत किया.

जैसा कि हम जानते हैं, विज्ञान और उद्योग-धंधों का परस्पर गहरा सम्बंध होता है. उस समय हमारे देश का कच्चा माल सस्ती दरों पर इंग्लैंड जाता था. वहाँ से तैयार वस्तुएं हमारे देश में आती थीं और ऊँचे दामों पर बेची जाती थीं. इस समस्या के निराकरण के उद्देश्य से डॉ. राय ने स्वदेशी उद्योग की नींव डाली. उन्होंने १८९२ में अपने घर में ही एक छोटा-सा कारखाना निर्मित किया. उनका मानना था कि इससे बेरोज़गार युवकों को मदद मिलेगी. इसके लिए उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ा. वे हर दिन कॉलेज से शाम तक लौटते, फिर कारखाने के काम में लग जाते. यह सुनिश्चित करते कि पहले के आर्डर पूरे हुए कि नहीं. डॉ. राय को इस कार्य में थकान के बावजूद आनंद आता था. उन्होंने एक लघु उद्योग के रूप में देसी सामग्री की मदद से औषधियों का निर्माण शुरू किया. बाद में इसने एक बड़े कारखाने का स्वरूप ग्रहण किया

> *आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय ने सन्यस्त तथा व्रती का जीवन बिताया. उन्होंने परिवार नहीं बसाया तथा आजीवन अविवाहित रहे, सांसारिक बंधनों तथा मोहमाया एवं परिग्रह से अपने को कोसों दूर रखा तथा देहावसान से पूर्व अपनी समस्त संपत्ति सामाजिक कार्यों के लिए दान कर दी थी.*

सर पी. सी. राय जीवन भर केवल एक संकीर्ण दायरे में बँधे प्रयोगशाला-विशेषज्ञ बन कर नहीं रहे. अपने देश की तरक्की तथा आत्मनिर्भरता हमेशा उनके आदर्श रहे. उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं चाहा, तथा सादगी एवं मितव्ययिता का कठोर जीवन जीया.

जो आज 'बंगाल केमिकल्स ऐण्ड फार्मास्यूटिकल वर्क्स' के नाम से सुप्रसिध्द है. उनके द्वारा स्थापित स्वदेसी उद्योगों में सौदेपुर में गंधक से तेजाब बनाने का कारखाना, कलकत्ता पॉटरी वर्क्स, बंगाल एनामेल वर्क्स तथा स्टीम नेविगेशन प्रमुख हैं.

डॉ. राय को ग्राम्य जीवन बहुत आकर्षित करता था. वे अक्सर ग्रामीणों से उनका सुख-दुःख, हालचाल लिया करते थे. वे अपनी माँ के भंडारे से अच्छी अच्छी खाद्य सामग्री ले जाकर ग्रामीणों में बांट देते थे. सन् १९२२ के बंगाल के अकाल के दौरान राय की भूमिका अविस्मरणीय है. 'मैनचेस्टर गार्डियन' के एक संवाददाता ने लिखा था; इन परिस्थितियों में रसायन विज्ञान के एक प्रोफेसर पी.सी. राय सामने आए और उन्होंने सरकार की चूक को सुधारने के लिए देशवासियों का आह्वान किया. उनके इस आह्वान को काफी उत्साहजनक प्रतिसाद मिला. बंगाल की जनता ने एक महीने में ही तीन लाख रुपए की मदद की. धनाढ्य परिवार की महिलाओं ने सिल्क के वस्त्र एवं गहने तक दान कर दिए. सैकड़ों युवाओं ने गाँवों में लोगों को सहायता सामग्री वितरित की. डॉ. राय की अपील का इतना उत्साहजनक प्रत्युत्तर मिलने का एक कारण तो बंगाल की जनता के मन में मौजूद विदेशी सरकार को धिक्कारने की इच्छा थी. इसका आंशिक कारण पीड़ितों के प्रति उपजी स्वाभाविक सहानुभूति थी, पर काफी हद तक उसका कारण पी.सी. राय का असाधारण व्यक्तित्व एवं उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा थी. वह अच्छे शिक्षक के साथ एक सफल संगठनकर्ता भी थे.

आचार्य राय ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी निभाई. गोपाल कृष्ण गोखले से लेकर गाँधी जी तक से उनका मिलना जुलना था. कलकत्ता में गांधी जी की पहली सभा कराने का श्रेय डॉ. राय को ही जाता है. राय एक सच्चे देशभक्त थे उनका कहना था- 'विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, स्वराज नहीं'. वह स्वतंत्रता आन्दोलन में एक सक्रिय भागीदार थे. उन्होंने असहयोग आन्दोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के रचनात्मक कार्यों में मुक्तहस्त आर्थिक सहायता दी. उन्होंने अपने एक भाषण में कहा था – मैं रसायनशाला का प्राणी हूँ. मगर ऐसे भी मौके आते हैं जब वक्त का तकाज़ा होता है कि टेस्ट-ट्यूब छोड़कर देश की पुकार सुनी जाए'. लेकिन अफसोस! डॉ. राय देश को स्वतंत्र होते अपनी आँखों से नहीं देख सके.

शोध सम्बन्धी जर्नलों में राय के लगभग २०० परचे प्रकाशित हुए. इसके अलावा उन्होंने कई दुर्लभ भारतीय खनिजों को सूचीबध्द किया. उनका उद्देश्य मेंडलीफ की आवर्त-सारिणी में छूटे हुए तत्वों को खोजना था. उनका योगदान सिर्फ रसायन विज्ञान सम्बंधी खोजों तथा लेखों तक सीमित नहीं है. उन्होंने अनेक युवकों को रसायन विज्ञान की तरफ प्रेरित किया. डॉ. राय ने एक और महत्त्वपूर्ण काम किया. उन्होंने दो खण्डों में 'हिस्ट्री आफ़ हिन्दू केमिस्ट्री' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा. इससे दुनिया को पहली बार यह जानकारी मिली कि प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान कितना समुन्नत था. इसका प्रथम खण्ड सन् १९०२ में प्रकाशित हुआ तथा द्वितीय खण्ड १९०८ में. इन कृतियों को रसायन विज्ञान के एक अनूठे अवदान के रूप में माना जाता है.

आचार्य राय ने बांग्ला तथा अंग्रेज़ी, दोनों भाषाओं में लेखन किया. सन १८९३ में उन्होंने 'सिम्पल ज़ुआलजी' नामक पुस्तक लिखी जिसके लिए उन्होंने जीवविज्ञान की मानक पुस्तकें पढ़ीं तथा चिड़ियाघरों और संग्रहालयों का स्वयं दौरा किया. उन्होंने 'बासुमति', 'भारतवर्ष', 'बंगबानी', 'बांग्लारबानी', 'प्रवासी', 'आनंदबाज़ार पत्रिका' और 'मानसी' जैसी पत्रिकाओं में बहुत सारे लेख लिखे. ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपनी आय का ९० प्रतिशत दान कर दिया. सन् १९२२ में उन्होंने महान भारतीय कीमियागार नागार्जुन के नाम पर वार्षिक पुरस्कार शुरू करने के लिए दस हज़ार रुपये दिए. सन १९३६ में उन्होंने आशुतोष मुखर्जी के नाम पर भी एक शोध-पुरस्कार शुरू करने के लिए दस हज़ार दिए. कलकत्ता विश्वविद्यालय को उन्होंने रसायन विभाग के विस्तार तथा विकास के लिए १,८०,००० रुपए का अनुदान दिया. ऐसे उदारमना विज्ञानी का १६ जून, १९४४ को निधन हो गया.

उनके बारे में यूनिवर्सिटी कॉलेज आफ साइंस, लंदन के प्रोफेसर एफ. जी. डोनान ने लिखा था : 'सर पी. सी. राय जीवन भर केवल एक संकीर्ण दायरे में बँधे प्रयोगशाला-विशेषज्ञ बन कर नहीं रहे. अपने देश की तरक्की तथा आत्मनिर्भरता हमेशा उनके आदर्श रहे. उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं चाहा, तथा सादगी एवं मितव्ययिता का कठोर जीवन जीया. राष्ट्र एवं समाज सेवा उनके लिए सर्वोपरि रहे. वे भारतीय विज्ञान के प्रणेता थे'. उन्होंने सन्यस्त तथा व्रती का जीवन बिताया. उन्होंने परिवार नहीं बसाया, तथा आजीवन अविवाहित रहे. सांसारिक बंधनों तथा मोहमाया एवं परिग्रह से अपने को कोसों दूर रखा. अपने देहावसान से पूर्व आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय ने अपनी समस्त संपत्ति सामाजिक कार्यों के लिए दान कर दी थी. ऐसा था ऋषितुल्य एवं प्रेरणादायी उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व. सचमुच, वे भारतीय विज्ञान जगत के ज्वाजल्यमान नक्षत्र थे.■

कौशिक कुमार शाण्डिल्य

एम.एससी. (रसायन), एम.ई. (ए. बायर नमेण्टल इंजी.) डिप्लोमा (कम्प्यूटर एल्लीकेशन), स्टील मेकिंग व रीरो कि पी.एचडी. (सिविल इंजी.) यूनिवर्सिटी ऑफ टोलेडो, लीड जी ए. क्वालिफाइड एन्वायरनमेटल प्रोफेशनल अनुभवी रिसर्च स्कॉलर, इन्वेस्टीमेटर साइंटिफिक ऑफिसर, रिसर्च एण्ड टैक्नॉलोजी में कमर्शियलाइजेंशन एक्सपर्ट स्पेशियलाइजेशन ऑफर फाइन पर्टीकुलेट्स, ग्रीन टैक्नॉजी क्लाइमेट चेत्र, व्हीकुलर एमिशन विशेषज्ञ. कई जर्नल्स में पेपर छपे तथा अनेक कॉन्फ्रेंसेज में लेख पढ़े गये.

सम्पर्क - MS 307, The University of Toledo, 2801 W. Bancroft Street, Toledo, OH 43606

Email : kaushandi@gmail.com

ग्लोबल वार्मिंग की समस्या का हल

पश्चिमी दुनिया चीन और भारत जैसे विकासशील देशों को ऊर्जा की अधिक खपत के लिए दोषी मानती है जबकि पहले से ही पश्चिमी देशों में ऊर्जा की खपत अधिक होती है. इस द्वन्द के दो विकल्प है : या तो दुनिया के राजनीतिज्ञ पारस्परिक आरोप-प्रत्यारोप लगाकर ऊर्जा की अधिक खपत करें या ग्लोबल वार्मिंग के समस्या-समाधान को चुनौती के रूप में स्वीकारें.

ऊर्जा-समाधान का योग्यतम स्वरूप, नाभिकीय ऊर्जा (न्यूक्लीयर एनर्जी वायो एनर्जी जैवकीय ऊर्जा) सामुद्रिक लहरों से प्राप्त ऊर्जा, भूजलीय श्रोतों से एकत्रित ऊर्जा आदि का समुचित उपयोग किया जाना है. उक्त वैकल्पिक ऊर्जा वर्तमान में तेल से निर्मित ऊर्जा की अपेक्षा बहुत ही सीमित गुणवत्तावाली है. किन्तु कई दृष्टिकोणों से भविष्य के लिए बहुत ही स्पर्धात्मक गुणवत्ता लिये होगी. इसके सर्वमान्य समाधान हेतु इस प्रश्न का उत्तर तय करना होगा कि ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण करने वाली कम्पनियां किस हद तक पर्यावरण और उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व का नियमन/निर्वहन करती हैं, यह बेहद पेचीदा प्रश्न है.

ऊर्जा का उत्पादन, वितरण और खपत इन तीनों बिन्दुओं पर यह प्रश्न लागू होगा. यदि हम अपने निवेचन को केवल विद्युतीय ऊर्जा तक ही सीमित रखते हैं तो 'ऊर्जा' न तो उत्पन्न होती है और न वह खपत होती है. और आगे तक जाने पर पता चलता है कि ऊर्जा तो केवल एक बदला हुआ रूप है जो (न्यूक्लीयर एनर्जी) न उत्पाद है और न खपत. यदि ऊर्जा को उत्पादन मानते हैं तो हम देखेंगे कि यह ऊर्जा कई स्रोतों से उत्पन्न होती है. 'विद्युत' जल से, कोयले से, वायु से, भूगर्भीय ताप से, जैविकीय ताप से या नाभिकीय ताप से उत्पन्न होती है. इन सभी उत्पाद-उद्योगों की अपनी-अपनी विशिष्ट परिस्थितियाँ हैं अतः उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार का ज्यादा गहरा मतलब नहीं है. प्रत्येक उद्योग के लिए गाइड लाइन तैयार करनी होगी. वास्तव में लोगों को एक संस्कृति विकसित करनी होगी.

प्रबन्धकों की संस्कृति, कर्मचारियों, उद्योगों और राजनीतिज्ञों की संस्कृति विकसित करनी होगी. अब वह समय आ गया है जब जन साधारण को पर्यावरण के लिए 'पृथ्वी मां' और अन्य गतिविधियों के बारे में उसे केन्द्र ही माना जाये. प्रबन्धकीय (मैनेजमेंट) और वित्तीय (फाइनेन्शियल) शिक्षा दुनिया में असफल रहीं, क्योंकि इसके नायक केवल व्यक्तिगत लाभ और संकीर्ण दृष्टिकोण ही अपनाए रहे जो उचित नहीं. सार्वभौमिक रूप से पर्यावरण पर प्रभाव को ध्यान में रखकर सोचना ही श्रेयस्कर है. दुनिया के प्रबन्ध और वित्तीय वृत्तों में बहुतायत सार्वभौमिक रूप से जलसाधारण के हित में सोच रखने वालों की है. निहित स्वार्थ पूर्ण उद्देश्यों के लिए सोचने वालों की तुलना में. कुछेक स्वार्थी तत्व कोई बहुत अधिक प्रभाव दुनिया में नहीं रखते जैसा कि हाल ही में दुनिया के आर्थिक परिदृश्य में दृष्टिगोचर हुआ. दुर्भाग्य से ऐसे संकीर्ण व्यक्ति न तो प्रोन्नत किए गये और न ही पुरस्कृत (कुछ जेलों में गये और कुछों को सेवाच्युत कर दिया गया.) ये सब कुछ वित्तीय संस्थाओं और व्यापारियों द्वारा अपने क्षुद्र मुनाफाखोरी और संकीर्ण सोच के कारण हुआ.

पर्यावरण जागरूक नागरिक - जैसा कि हम जानते हैं किसी भी समस्या के बारे में हम सब कुछ नहीं जान सकते हैं. अतः उपलब्ध सूचना, जानकारी से सदैव दूर का सोचे जिससे कि समस्या के समाधान में प्रभावी ढंग व सुरक्षा पूर्ण कारगर ढंग से व्यवस्था कायम रह सके. शिक्षा-प्रशिक्षण के बहुत ही उन्नत तरीके प्रयोग में लाए जावें.

प्रचलित तरीकों में गुणात्मक सुधार लाया जावे. नवीनतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जावे. उत्पादन, रखरखाव, नष्ट होना और फिर से नया बनाना ऐसा तरीका है जिससे व्यापार और प्रबन्ध दोनों कतराते हैं जब तक कि इस प्रक्रिया को अमल में लाने के लिये दवाब न बनाया जाये. उनकी सीमा केवल एक बार बनाने और उस समय तक उसका लाभ उठाने की रहती है जब तक कि वह बनायी हुयी प्रणाली नष्ट न हो जाए. प्रबन्ध में बहुउद्देशीय, बहुनस्लीय विचारधारा विकसित अवश्य की गयी है किन्तु लागू कभी नहीं की गयी. इसके लिए एक मजबूत अनुशासित वित्तीय अधोसंरचना की आवश्यकता होती है. जैसे कि (रिसर्च डेव्हलपमेंट) रखरखाव, और पूर्णतः नवीन प्रणाली उत्पाद के लिए वित्तीय अधोसंरचना तैयार की जाती है. कार्य और बुनियादी शिक्षा के लिये विशेष प्रकार की जानकारी वाले एक्सपर्ट व दक्षकर्मियों की आवश्यकता होती है. यह नेतृत्वपूर्ण एक्शन होने के लिए आवश्यक है केवल इच्छा व्यक्त कर देना पर्याप्त नहीं है.

किन्हीं नियमों के अभाव में किसी भी स्थान पर जनता पर अत्याचार या कार्यवाही के लिए केवल एक यही प्रणाली है जिसके लिए एक पक्षीय या एक ही दृष्टिकोण के अतिवादियों की भीड़ होना आवश्यक है. समाज एक ऐसी मैक्रो मशीन का रूप ले लेता है जो बिना नियमों के लगातार कार्यवाही करता रहता है. संस्कृति की समस्या स्थायी है. जब सब कुछ अपने आप पीछे चलत रहता है तो ऐसी सुदृढ़ सोची-विचारी दूरगामी सर्वजनहिताय संस्कृति विकसित क्यों न की जावे जिसमें स्वतः जिम्मेदारी ली जावे. यह जबरन लायी नहीं जा सकती, आन्तरिक रूप से समझकर अपनायी जाती है.

घर में विद्युत बल्वों की जगह फ्लोरेसेट ट्यूव का उपयोग होना चाहिए. लैडवेस उपकरण लगाये जायें. डिस्पाजेबल मटैरियल का कम से कम इस्तेमाल किया जाना चाहिये. पॉक्प्रिोपेलीन या पॉलिस्टरीन पर आधारित डिस्पोजेबल्स का इस्तेमाल करें जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में मिल कर नष्ट हो जावे.

एक उपभोक्ता के रूप में ऊर्जा की खपत को कम करने के लिए घर में या कार्यस्थल पर क्या-क्या आयाम अपनाए जाने चाहिये. प्रथमतः घर में विद्युत बल्वों की जगह फ्लोरेसेट ट्यूव का उपयोग होना चाहिए. लैडवेस उपकरण लगाये जायें. डिस्पाजेबल मटैरियल का कम से कम इस्तेमाल किया जाना चाहिये. पॉकिप्रोपेलीन या पॉलिस्टरीन पर आधारित डिस्पोजेबल्स का इस्तेमाल करें जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में मिल कर नष्ट हो जावे. अच्छी प्रकार से सुरक्षित प्राकृतिक वातावरण में रहे जिसमें दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक में विद्युत ऊर्जा की खपत न हो. ठण्ड के दिनों में इन्सुलेटेड हाउस में रहें. ऊर्जा द्वारा गर्म होने वाले तले या भुने खाद्यानों को प्रयोग में न लावें. केवल एक कामन रूम में ही हीटर का उपयोग करें. विलिडंग्स के डिज़ाइन ऐसे अनुशंसित हो जिनमें साधारणतः ग्लोवल वार्मिंग घटाने में मदद मिले. मकान का स्ट्रक्चर खुला हो, छत ऊंची हो, सर्वोच्च स्थान पर बड़ा वैण्टीलेशन अवश्य हो, स्थानीय हवाओं के रुख वर्फ की चौधारा और धूप के डायरेक्शन के अनुसार सुविधाएं रखी जावें. सूर्य ऊष्मा से गर्म होने वाले पानी के उपकरण व रोशनी करने वाले उपकरणों को इस्तेमाल में लाया जावे. ऐसे मकानों का निर्माण हो जिनमें प्रकाश की जरूरत केवल रात्रि में या सूर्यास्त होने पर ही पड़े. तात्पर्य यह है कि विद्युत खपत कम से कम होनी चाहिए. घर में फोटो वोल्टेक लगायें. बाहरी बिजली की जरूरत केवल हैवी लोडवॉल उपकरणों के लिए होनी चाहिये.

ग्लोबल वार्मिंग की समस्या पर नियंत्रण व्यक्तिगत स्वर पर संभव है. स्पेस में परिवर्तन और हरित संस्कृति को व्यापार प्रबन्ध और राजनीति की अराजकता को क्रद्धड्डड्डद ख्द्धथ्द्यद्वद्धड्ड की संस्कृति अनिवार्य कर देने से मानवता के लिए प्रार्थना का उत्तर दिया जा सके. उसकी अवज्ञा मातृभूमि की कीमत पर सहन नहीं की जा सकती है. ग्लोबल वार्मिंग जैसी बड़ी समस्या से दुनिया के समाजों को लड़ने की घड़ी आ पहुंची है. ऊर्जा की गुणवत्ता बनाए रखने में ही ग्लोबल वार्मिंग समस्या का हल है.■

महेशचंद्र द्विवेदी

७ जुलाई, १९४१ को मानीकोठी, इटावा में जन्म. लखनऊ विवि से भौतिकी में एम.एस.सी. गोल्ड मेडलिस्ट, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से सोशल प्लानिंग में एस.एस.सी. के अलावा डिप्लोमा इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की उपाधियाँ हासिल कीं. प्रकाशित पुस्तकें : उर्मि, भीगे पँख - उपन्यास, सर्जना के स्वर, अनजाने आकाश में - कविता संग्रह, एक बौना मानव, लव-जिहाद - कहानी संग्रह, सत्यबोध- कहानी संग्रह, क्लियर फ़ंडा- व्यंग्य संग्रह, भज्जी का जूता- व्यंग्य संग्रह, प्रिय अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग- संस्मरण. लंदन, डिट्रॉइट, सिन्सिनाटी, राली, शिकागो, एटलांटा, बर्मिंघम एवं वूल्वरहैम्प्टन में मंचीय काव्य पाठ. सम्प्रति- पुलिस महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त.

संपर्क : 'ज्ञान प्रसार संस्थान', १/१३७, विवेकखंड, गोमतीनगर, लखनऊ. ईमेल : mcdewedy@yahoo.com

यात्रा-वृत्तांत

मायामी से बहामाज़ तक

देवताओं की इन्द्रनगरी आकाश लोक में स्थित है और आजकल मेरी पाताल लोक में है - पृथ्वी के दूसरे छोर के सागर-तल पर. मुझे लगता है कि देवताओं को इसका ज्ञान नहीं है कि पाताल लोक में भी स्वर्गिक नगरी है, जो कुछ प्रकरणों में उनकी नगरी से अधिक मोहक है, अन्यथा देवता अपनी नगरी छोड़कर इसी में आकर बसना पसंद करते और अब तक एक देव-मानव संग्राम हो चुका होता.

पाताल लोक की इस इन्द्रनगरी का एक कालखन्ड, जिसमें मैं अपनी पत्नी नीरजा, पुत्र देवर्षि, पुत्रवधु अनामिका, पौत्र देवांश एवं पौत्री अदिति के साथ यात्रा कर रहा हूं अथवा जीवित एवं जागृत अवस्था में स्वर्गिक संसार में जी रहा हूं. स्वर्गिक इसलिये कि यह एक स्वर्णिम नगरी है- निशि-दिवस स्वर्ण-सी झिलमिलाती, वांछनीय वस्तु को इच्छा करते ही उपलब्ध कराती एवं दैनिक चिंताओं से मुक्त कराती, यहां तक कि प्रायः दूरभाष, समाचार-पत्र एवं दूरदर्शन तक को अनुपलब्ध कराकर संसार के दुख एवं कष्टों के ज्ञान से भी अनभिज्ञ रखती है. मुझे नहीं लगता कि देवताओं का स्वर्ग इससे अधिक आनंददायक होगा. हां, जिस प्रकार स्वर्ग के सुखों से ऊबकर इन्द्र कभी-कभी भूलोक का हाल-चाल जानने को इच्छुक हो जाते हैं, उसी प्रकार यदा-कदा दूरदर्शन का सम्पर्क स्थापित हो जाने पर यहां पर सांसारिक घटनाओं की झलकी मिल जाती है.

अन्यथा यहां रहकर मैं कल्पना भी नहीं कर सकता हूं कि संसार में कहीं कुछ कष्ट, अभाव अथवा निर्धनता है. यहां है तो बस सुख-समृद्धि का आधिक्य, आधिक्य एवं और अधिक आधिक्य.

मेरी यह अद्भुत नगरी एक जलपोत में समाई हुई है, जो मयामी नामक मायानगरी से सायं चार बजे दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर चुका है. पोत में घुसते ही एक आकर्षक नवयौवना ने मुस्कराकर हमसे चित्र लेने की अनुमति मांगी और हमारे चित्र ले लिये हैं. उस समय चित्र लेने का कारण मुझे सुरक्षा से सम्बंधित होना समझ में आया है, परंतु बाद में पता चला कि लगभग प्रतिदिन किसी न किसी समय हमारे चित्र लेकर उन्हें प्रति-सायं गैलरी में लगा दिया जाता है, जिससे अपनी पसंद के अनुसार हम उन्हें क्रय करके यादगार के रूप में रख सकें. मायामी विश्वप्रसिद्ध मायानगरी है- पाताल लोक में स्थित सैलानियों का स्वर्ग. जलपोत ज्यूं-ज्यूं मायामी तट की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, तट पर स्थित अन्य जलपोतों एवं नावों को दूर छोड़ते हुए सागर के वक्ष पर फिसलते हुए उसके असीम विस्तार में समा रहा है, त्यों-त्यों हमें एक ऐसे रोमांचकारी एकाकीपन का आभास हो रहा है, जैसा साधु-सन्यासी पर्वत कन्दराओं के एकांत में रहने पर करते होंगे, एक नया संसार, जहां पीछे छूटे हुए संसार से 'न उधौ का लेना, न माधव का देना' होता है. अपने कक्ष से मैं मीलों लंबे मायामी बीच पर स्नान करते और धूप खाते स्त्री-पुरुषों को अपने से दूर होते देख रहा हूं. उनके आंख से ओझल होने पर मेरा ध्यान अपने कक्ष के वैभव पर जाता है. मेरे कक्ष की प्रत्येक वस्तु में रंगों का नेत्र-सुखकारी एवं मनमोहक संयोजन है. लाल-श्वेत रंग का फ़र्श पर बिछा कालीन, दूधिया सफ़ेद रंग का नर्म मुलायम बिस्तर, नारंगी रंग की दीवालें एवं छत अपनी बनावट, चमक एवं स्वच्छता में अद्वितीय हैं. सबसे अद्भुत दृश्य तो कमरे के पीछे की दीवाल में

लगी बड़ी-सी खिड़की प्रस्तुत कर रही है- क्षितिज की सीमा तक हरहराता समुद्र, जो आकाश में यहां-वहां छाये बादलों के टुकड़ों के कारण कहीं गहरा नीला, कहीं आसमानी नीला, कहीं बैंगनी, तो कहीं हरा-सा हो रहा है. 'कार्निवाल डेस्टिनी' नामक इस जलपोत के २१ नौट प्रति घंटा की गति से सागर की लहरों को चीरते हुए आगे बढ़ने से पोत के आस-पास दूर-दूर तक श्वेत झाग उछल रहा है. सामने से आती हुई जल-तरंगों के जहाज़ के टकराने से कभी-कभी लहरों के छींटे मेरी खिड़की तक आ पड़ते हैं. लहरों की उछाल की ऊंचाई का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जहाज़ की कुल ऊंचाई ७२ मीटर अर्थात २३७ फ़ीट है जिसमें से २० मीटर पानी के अंदर ही रहती है और शेष में १३ मंज़िल निर्मित हैं- शून्य मंज़िल तथा जलस्तर के नीचे मेडिकल सेंटर आदि हैं एवं जहाज़ के कर्मचारी रहते हैं और १, २, ६, ७, ८ में पूर्णतः तथा ९, १० एवं ११ मन्ज़िलों में अंशतः दायें-बायें किनारे पर दो-दो पंक्तियों में यात्रियों के कमरे हैं तथा ३, ४, ५ मंज़िल पर पूर्णतः एवं ९, १०, ११ मंज़िलों पर अंशतः भोजनालय, मदिरालय, नृत्यालय, प्रेक्षालय, कसीनों, स्वर्णाभूषण की दुकानें, स्विमिंग-पूल, जा-कूज़ी, स्पा, ब्यूटी-सलून, बास्केटबाल, वॉलीबॉल, टेबुल-टेनिस आदि खेलने के मैदान, मिनी-गौल्फ़ कोर्स, योग-स्थल, धूप का सेवन करने हेतु सैकड़ों आराम-कुर्सियां, दौड़ने हेतु डेक, कार्यालय आदि निर्मित हैं. बारहवीं मंज़िल पर पूरा खुला डेक है. जहाज़ में कुल ३२०० यात्री एवं ११०० कर्मचारी यात्रा कर रहे हैं. इस सबको समाने के लिये जहाज़ की लम्बाई २७३ मीटर यानी लगभग ९०० फ़ीट है. मैं जहाज़ के दूसरे डेक पर हूं.

हमारा जलपोत गहरे सागर में आ गया है और मायामी की मायानगरी अदृश्य हो गई है. अब हम कक्ष से बाहर निकलकर 'एलीवेटर्स-लॉबी' में आते हैं, यहां प्रकाश हल्का सा है जिसमें सब कुछ स्वर्णनिर्मित एवं रत्नजटित सा दिखाई पड़ता है. उस चकाचौंध में हमारा मस्तिष्क जब समष्टि से व्यष्टि पर केंद्रित होता है, तब हम पाते हैं कि वहां दो दिशाओं में आमने-सामने बंद कमरे वाले तीन-तीन एलीवेटर्स हैं, एक दिशा में कांच की दीवालों वाले चार एलीवेटर्स हैं और उनके सामने की दिशा में चमचमाती कालीन आच्छादित सीढ़ियां हैं. हम पारदर्शक कांच वाली एलीवेटर में चढ़ते हैं. हमारे नेत्रों के सामने से गुज़रती हर मन्ज़िल इन्द्रधनुषी

एवं अप्रतिम सुंदर है. 'लीडो' नामक नवें डेक पर हम बाहर आते हैं और डेक के खुले भाग की ओर चल देते हैं. एक स्टेडियम जैसा दृश्य दिखाई देता है. सर्वप्रथम दाहिने-बांयें खूब चौड़ी सीढ़ियां जिन पर सैकड़ों आराम-कुर्सियां बिछी हुई हैं, फिर स्विमिंग-पूल, उसके दांयें-बायें जा-कूज़ी और बच्चों के स्विमिंग पूल. उसके पश्चात सिनेमा-हाल के बराबर स्क्रीन जिस पर चलचित्र दिखाई दे रहा है, उसके पीछे 'बार' और रेस्त्रां तथा दायें-बायें कुर्सियां और मेज़ें जिन पर बैठकर खाते-पीते हुए सागर-दर्शन का आनंद लिया जा सकता है. इन सब के पीछे था एक बहुत बड़ा भोजनालय, इस भोजनालय के पीछे था दूसरा रेस्त्रां, बार और फिर स्विमिंग पूल और जा-कूज़ी. उसके दाहिने पीज़ा बार जहां चौबीसों घंटे मनचाहा पीज़ा मिनटों में बनवाया जा सकता है, उसके बगल में चौबीसों घंटे खुलने वाला डिलाई रेस्त्रां. इन सबके पीछे रखी कुर्सियों से पोत के जम्बो आकार के पंखों से पीछे छोड़े जाने वाले जल का अनिर्वचनीय दृश्य दिखाई देता है. नील जल में उठने वाली श्वेत फेनिल जलधारा जो पीछे सहस्रों मीटर तक ऐसा दृश्य बनाती है, जैसा यदा-कदा सायंकाल के आकाश में उड़ते हुए जम्बो-जेट बनाते हैं. हमने विशालकाय लीडो रेस्त्रां में लंच लिया और बाहर आकर दसवें डेक पर चढ़ गये. वहां एक ओर बच्चों की वाटर-स्लाइड, टेबुल-टेनिस व बॉस्केटबाल के क्रीड़ा-स्थल और दूसरी ओर स्पा, ब्यूटी-सलून, योग-कक्ष आदि तथा उसकी छत पर दौड़ लगाने के लिये लम्बा-चौड़ा ट्रैक था.

अपने कक्ष में लौटकर घण्टे भर के लिये हम निद्रारानी की गोद में खो गये. जागने पर कक्ष में रखे उस दिन के कार्यक्रम का अध्ययन किया, तब पता चला कि अभी तो हमने इस नगरी का अंशमात्र देखा है. भोजनालयों में भी अभी केवल अनौपचारिक प्रकार ही देखे हैं. रात्रि-भोज के लिये तो औपचारिक प्रकार के अनेक अन्य भोजनालय हैं, जहां रात्रि-भोज में मनपसंद भोजन शाही अन्दाज़ में परोसा जाता है. उस समय प्रतिदिन पोत के व्यवस्थापक हमसे पूछने आते हैं कि हम कैसे हैं और हमें भोजन कैसा लगा, हमारे मनचाहे पोज़ में फोटो लिये जाते हैं, यदि किसी की किसी प्रकार की वर्षगांठ है तो गा-गाकर बधाई दी जाती है और विभिन्न देशों का संगीत-नृत्य सुनाया-दिखाया जाता है- एक रात्रि भोजन के बीच समस्त परिचारकों ने ए.आर. रहमान के 'जय हो' गाने की धुन पर नृत्य कर हम भारतीयों को विशेषतः आनंदित किया. इस इन्द्रनगरी में छप्पन- सम्भवतः उससे भी कहीं अधिक प्रकार के- भोजन, अनगिनत प्रकार के पेय, फल एवं मिष्ठान्न चौबीसों घंटे सजे-सजाये लगे रहते हैं, जिससे हमारी इच्छा करते ही उपलब्ध हो सकें. संसार का सम्भवतः बिरला ही देश होगा जहां के स्वादिष्टतम भोज्य एवं पेय

पदार्थ तथा फल-फूल यहां उपलब्ध न हों. फिर हम चाहे कितना भी खायें-पियें और चाहे कितना भी बरबाद करें, किसी को कोई अंतर नहीं पड़ता है क्योंकि सभी पदार्थ प्रातः एवं सायं दोनों समय इतनी मात्रा में बनाये जाते हैं कि टनों में बचते हैं जिन्हें दोनों समय पाताल लोक की अतल गहराइयों में फेंक दिया जाता है. यह इन्द्रनगरी चौबीसों घंटे जागृत रहती है- विशेषतः रात्रि जैसे गहराती है यहां की चमक एवं उछाह द्विगुणित होते जाते हैं. इस उछाह को बनाये रखने एवं बढ़ाते रहने के लिये यहां इतने प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है कि कोई व्यक्ति न तो सबको देख-सुन सके और न ऊब सके. यद्यपि प्रथम दिवस जलपोत अपरान्ह ४ बजे चला था, तथापि उस दिन 'वेल्कम अबोर्ड शो', गिटार म्यूज़िक, कैरीबिअन म्यूज़िक, फ़न म्यूज़िक, शोबैंड, लैटिन म्यूज़िक, करिओके पार्टी, पिआनो म्यूज़िक, सिंग-अलौंग पार्टी, डांसिंग म्यूज़िक, डांस साउंड, हिट दि जैकपौट, फ़न पैट्रोल, गेम-शो, डिस्को-डांस, प्रौमीनेड पार्टी, लेज़र-टैग, टैड्ढ-यू, लिकर-टेस्टिंग आदि के अतिरिक्त तीन विशेष कार्यक्रम बच्चों को अभिभावकों से अलग रहकर खेलने, बहलाने और खिलाने-पिलाने के लिये आयोजित थे.

सायं होने से पूर्व जब हम नवें तल पर खुले आकाश से समुद्र-दर्शन करने निकले, तब देखा कि स्वर्ग की परम्परानुसार इस नगरी में विश्व की सुन्दरतम अप्सरायें स्विमिन्ग-सूट (अर्थात दो इन्च चौड़ी दो पट्टियां) धारण किये हुए इठलाकर चलते हुए, जान-पहिचान वालों एवं अजनबियों से भी मुस्कराकर गुड-मौर्निंग, गुड-ईविनिन्ग करते हुए, स्विमिंग-पूल में मछली के समान बिअर पीते और तैरते हुए अथवा मगर के समान निश्चल होकर आराम-कुर्सियों पर इच्छानुसार चित-पट लेटे हुए बहुतायत में मिलतीं हैं. इन्द्र के दरबार में जो अप्सरायें हैं, वे बदन को पूर्णतः ढककर रखतीं हैं, परंतु चूंकि यह पृथ्वी पर उतरा स्वर्ग है अतः यहां की अप्सराओं में बदन को अधिकतम खुला रखने की होड़ लगी रहती है. विश्व के समस्त देशों से आईं सुंदरियां अधिकांशतः दो इंच चौड़ी एक पट्टी को धागे से बांधकर उसकी गांठ पीठ पर और दूसरी की दो गांठें कमर पर दांयें-बांयें बांध लेतीं हैं. ये प्रायः जलाशय में मछलियों की भांति तैरती रहतीं हैं अथवा किनारे पर पड़ी आराम-कुर्सियों पर लेटकर सुरापान करतीं रहतीं हैं. परंतु उसी नगण्य परिधान में वे अन्यत्र भी घूमतीं-फिरतीं, आपस में गपियातीं, अपने ब्वाय-फ्रेंड से चिपकी हुईं अथवा आइस्क्रीम भकोसती हुई पाई जाती हैं. सभी को प्रारम्भ में ही स्पष्ट बता दिया गया है कि इस नगरी का नियम है 'कैजुअल लिविंग' अर्थात डिनर के समय को छोड़कर नंगे-उघारे ही घूमने की सबसे अपेक्षा की जाती है. देवों एवं अप्सराओं की निकटता के यहां के नियम भी स्वर्ग

लोक के नियमों की तुलना में शिथिल हैं और छोटे से जा-कूज़ी में अनेक पुरुष एवं अप्सराएं एकसाथ स्नान-मद्यपान करते रहते हैं. जलक्रीड़ा के पश्चात बाहर निकलकर ये सुंदरियां धूप सेंकने हेतु आराम कुर्सियों पर ऐसे पसर जातीं हैं जैसे भीष्म को अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देने हेतु चुनौती दे रही हों. उन्हें यदि अपने पृष्ठ-भाग को सेंकने की इच्छा होती है, तो उलटे लेटकर पीठ पर बंधे धागे को भी खोल देतीं हैं. चूंकि सुन्दरता के वास्तविक भान के लिये असुंदरता की यदा-कदा उपस्थिति आवश्यक होती है, अतः इन सुंदरियों के अगल-बगल एक से एक भीमकाय श्वेत-श्याम वर्ण की थुल-थुल बदनीया भी मिल जातीं हैं. ये संसार में भोजन के आधिक्य का जीता जागता प्रमाण होतीं हैं.

उन्चालीस घंटे की अहर्निश यात्रा के उपरांत तीसरे दिन प्रातः ७ बजे हमारा पोत ग्रैंड टर्क आइलैंड पहुंचता है. हमने आइलैंड में फ़िशिंग, स्नौर्केलिंग, डाइविंग, साइट-सीइंग आदि के टिकट नहीं लिये थे, अतः जलपोत के पहुंचने के समय हम आराम से सोते रहे थे. आठ बजे जागने पर हम पाते हैं कि भूलोक का एक सुंदरतम खंड हमारे पोत के समक्ष स्थित है. 'बीच' के निकट ही हमारे पोत में भीमकाय लंगर डाल दिये गये हैं. 'अर्ली-बर्ड' पोत से उतरकर बीच पर स्नान करने लगे हैं. चार घंटे के बाद हम आराम से तैयार होकर बीच-टावेल लेकर पोत से उतरकर द्वीप पर ऐसे आते हैं, जैसे देवता स्वर्ग से उतर कर पृथ्वी पर आयें. द्वीप में प्रवेश देने से पूर्व हमारे पास-पोर्ट सहित हमारी चेकिंग की जाती है. चेकिंग हेतु खड़े सेक्योरिटी वाले से पूछने पर पता चलता है कि यह द्वीप ब्रिटेन के अधीन है. पोत से बाहर आते आते आकाश में छाये घटाटोप बादल बरसने लगते हैं. उनका बरसना कोई विशेष दृश्य उपस्थित न करता, यदि ये बादल अनवरत भयानक तुमुलनाद मचाते हुए गरज न रहे होते. बादलों के मध्य तड़ित की ऐसी मायावी चमक एवं टंकार हमने पहले कभी नहीं देखी-सुनी थी. वातावरण के इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण हमें वह अविस्मरणीय दृश्य तो देखने को मिला, परंतु समुद्र में स्नान करने के आनंद से हम वंचित रह गये, क्योंकि स्नान करने वालों पर बिजली गिर जाने की

आशंका के कारण 'बीच' पर नियुक्त सुरक्षा गार्डों ने सभी स्नानार्थियों को समुद्र से बाहर कर दिया था. मैं बच्चों के साथ रेत पर खूब दौड़ा और विभिन्न प्रकार के घरौंदे बनाये. दो घंटे बाद हम पोत पर लौट आये- तब तक आकाश साफ़ हो चुका था और धूप निकल आई थी. हमारा पोत २.३० बजे अपरांह एक लम्बा-सा साइरन बजाकर भीमकाय ह्वेल मछली के समान प्रस्थान कर चुका था और हम देर तक दसवें डेक पर खड़े होकर ग्रैंड टर्क के सिलुएट को देखते रहे थे. ग्रैंड टर्क से दूर अथाह सागर के मध्य पहुंचने पर हम फिर इन्द्रनगरी के इन्द्रजाल के वशीभूत हो अविरल आनंद में खो गये थे- कहीं नृत्य, कहीं गायन, कहीं विदूषक, कहीं चलचित्र और कहीं रात्रि के तिमिर में अठखेलियां करती सागर की लहरें.

अगले दिन नौ बजे प्रातः हमारा जलपोत 'हाफ़ मून की' नामक द्वीप के किनारे लंगर डाल चुका था. यह एक छोटा-सा द्वीप है जो कार्निवल कम्पनी का निजी द्वीप है. यह द्वीप आकार में छोटा अवश्य है पर आनंद देने में खोटा नहीं है. यहां हम लोग जब उतरे तो तेज़ धूप के कारण गर्मी बहुत सता रही थी- कहीं-कहीं वृक्ष थे, परंतु आकार में छोटे थे. कार्निवाल कम्पनी का निजी द्वीप होने के कारण उन्होंने यहां हमारे लिये स्थान-स्थान पर जल एवं भोजन का प्रबंध कर रखा था तथा कैरीबियन म्यूज़िक से हमारा स्वागत किया था- आखिरकार पांच दिन के लिये हम उनके दामाद ही तो थे. 'बीच' के किनारे पर बैठने-लेटने के लिये आराम-कुर्सियों का भी प्रबंध किया था. वहां पहुंच कर हमने कपड़े उतारे और आनन फानन में जल में तैरने लगे. पहले तो पानी बड़ा ठंडा लगा, परंतु एक डुबकी लेने के बाद अत्यंत आह्लादकारी लगने लगा. मैने अपने जीवन में किसी 'बीच' को इतना निर्मल एवं श्वेत नहीं देखा है. यद्यपि सैकड़ों लोग वहां स्नान कर रहे थे, परंतु कहीं भी गंदगी, फेना, कृमि अथवा खर-पतवार का यहां के जल में नामो-निशान भी नहीं था. बालू का पूर्णतः श्वेत रंग जल की निर्मलता में चार-चांद लगा रहा था. चार बजे हम नवें डेक पर लौट आये. वहां से आकाश में पैरा-सेलिंग करते हुए लोग हमें मनुष्यों के चिड़ियों के समान उड़ने का भान करा रहे थे. स्पीड बोट में छतरीनुमा गुब्बारा लगाकर उसमें एक आदमी को बांध दिया जाता था. फिर ढील देने पर और स्पीड बोट के समुद्र में आगे बढ़ने पर वह गुब्बारा पतंग की भांति ऊपर उठता जाता था. यद्यपि गुब्बारे से बंधा व्यक्ति डोरी से स्पीड बोट से बंधा रहता था तथापि सैकड़ों फ़ीट की ऊंचाई पर से उसे सागर उसी प्रकार का दिखता होगा जैसा चील को दिखता होगा. मेरी बहू अनामिका द्वारा एक महिला, जो पैरासेलिंग करके लौटी थी, से यह पूछने पर कि सागर के ऊपर इस तरह उड़ते रहने में डर तो लगता होगा, उस महिला का उत्तर था कि डर चाहे कितना भी लगे, परंतु 'वन्स इन लाइफ़टाइम' का यह अनुभव छोड़ने लायक नहीं है. सायं ५.३० बजे जलपोत के लंगर खोल दिये गये. उस रात्रि पैलेडियम लाउंज का 'लव ऐंड मैरिज शो' तथा रात्रि में ११.३० बजे प्रारम्भ होने वाला लीडो में मेगाडेक पार्टी अत्यंत आह्लादकारी थे.

अगली प्रातः ८ बजे जब हमारा जलपोत रुका तो वह बहामाज़ के नासाव द्वीप के इतना अंदर घुस चुका था कि हमें लगा कि हम बीच शहर में आ गये हैं. पोत से उतरते समय बहामा के आदिवासियों की वेशभूषा में वहां खड़े एक व्यक्ति के साथ हमसे फोटो खिंचवाने का आग्रह किया गया. जब हम उसके दोनों ओर खड़े होने लगे, तो उस समय हमें आश्चर्यमिश्रित हर्ष हुआ जब वह मेरी पत्नी नीरजा से शुद्ध हिंदी में बोला,

'माता जी, आप बाईं ओर आ जाइये.'

पूछने पर ज्ञात हुआ कि जहाज़ पर काम करने वाले गोआ निवासी कर्मचारियों में से एक को आदिवासी बनाकर खड़ा कर दिया गया था. फिर जब हम लोग द्वीप घूमने के लिये वैन को किराये पर लेने लगे, तो हमारे साथ यात्रा कर रहे प्रदीप कुमार सपरिवार आ गये और उनकी चार सवारियां मिलाकर वैन को पूरी दस सवारियां मिल गईं और हम लोग हिंदी में गप मारते हुए द्वीप भ्रमण पर चल दिये. वैन का ड्राइवर साइमन बड़ा समझदार और दिलदार आदमी था- वह न केवल हमें बहामा के इतिहास, भूगोल, राजनीति एवं समाज का ज्ञान कराता रहा, वरन बहामा के गीत भी सुनाता रहा. वहां के वर्तमान गवर्नर जनरल के आवास के सामने कोलम्बस का स्मारक है. वह वहां १४८५ में आया था. कुछ दूर पर एक छोटा-सा किला है, जो प्रारम्भ में आये स्पैनिश लोगों द्वारा समुद्री लुटेरों का मुकाबला करने को बनाया गया था. कालांतर में वहां ब्रिटिश का कब्ज़ा हो गया था. आजकल एक लाख पचासी हज़ार की आबादी वाला बहामा एक स्वतंत्र देश है परंतु कामनवेल्थ का सदस्य है. बहामा की आमदनी का मुख्य स्रोत सैलानी हैं. अधिकांश लोग क्रिस्चियन हैं. बहामा द्वीप के आसपास छोटे-छोटे अनेक द्वीप हैं और वह ब्लू-लगून भी है जहां इस नाम की प्रसिद्ध फ़िल्म की शूटिंग हुई थी. यद्यपि द्वीप का बाज़ार एक कस्बे जैसा लगता है, परंतु दूर समुद्र के किनारे स्थित पांच-सितारा ऐटलांटिस होटल की शान सचमुच निराली है. इस होटल का मछलीघर विश्वस्तरीय है. सायंकाल ६ बजे जब हमारा जलयान बहामा छोड़ रहा था, हम बहुत देर तक दसवें डेक से द्वीप को निहारते रहे थे. उस दृश्य को हम तभी मन से ओझल कर पाये थे जब रात्रि में पैलेडिअम लाउंज की स्वर्गिक छटा में आयोजित विश्व के अनेक देशों के नृत्यक्रम ने हमारा मन मोह लिया था. ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, टर्की, रोमानिआ, थाईलैंड आदि देशों के नृत्य एक के पश्चात एक बिना एक पल का व्यवधान हुए ऐसे प्रस्तुत किये जा रहे थे जैसे चलचित्र में देख रहे हों. उस रात्रि हम और कुछ देखने के बजाय उन उत्कृष्ट नृत्यों के स्वप्नों में खोकर सो गये थे.

प्रातः आठ बजे जब हमारा जलयान मायामी के किनारे पर आ लगा, तब हम अपने को स्वर्ग-भृष्ट देवता समझ रहे थे.■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

सुन्दरकांड का नाम सुन्दरकांड क्यों

सुन्दरकांड मानस में एक विशेष अध्याय है. पाँचवाँ अध्याय जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच तत्व हैं. इस पाँचवें अध्याय में इन पंच महाभूतों की प्रभविष्णुता है. पृथ्वी जो मैनाक पहाड़ की तरह ठोसत्व के अनुतत्व का प्रतिनिधित्व करती है, समुद्र जो तारल्य के अनुतत्व का प्रतिनिधित्व करता है, ऊष्मा के अनुतत्व वाली अग्नि जो लंका दहन में रूपायित होती है, कम्पन के अनुतत्व वाली वायु जो मरुत पुत्र और 'चले मरुत उनचास' में प्रदर्शित होती है. आकाश, जिसके मार्ग से हनुमान चले, स्पेस के अनुतत्व को बताता है. सुन्दरकांड में इन पाँच तत्वों का प्राबल्य है. बाक़ी सारे अध्याय स्थान या अवस्था के सूचक हैं. अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, लंका जैसे स्थान या बाल या युद्ध जैसी अवस्थाएँ. लेकिन यह एकमात्र ऐसा कांड है जो इस महाकाव्य के अध्याय नामांकन की प्रचलित रूढ़ि से हटकर है. यह जिस सौन्दर्य के विशेषण को शीर्षक का आधार बनाता है वह कौन सा सौन्दर्य है?

क्या यह वही है जिसे सुकरात ने एक अल्पजीवी दुःशासन कहा था? क्या वही जिसे प्लेटो ने प्रकृति का विशेषाधिकार कहा था? क्या वही जिसे थियोक्रिटस ने एक मज़ेदार पूर्वाग्रह कहा? जिसे कार्नियाडेस ने एकछत्र राज्य कहा? या जिसे ओविड ने देवताओं के द्वारा किया गया पक्षपात कहा?

क्या रावण का राज्य एक अल्पजीवी दुःशासन नहीं था? क्या रावण प्रकृति (या ईश्वर) के कुछ वरदानों (वरदान विशेषाधिकार के अलावा हैं भी क्या) का निर्लज्ज उपभोग नहीं कर रहा था? क्या रावण पूर्वाग्रहों के साथ अट्टहास नहीं कर रहा था? क्या रावण का राज्य एकछत्र राज्य नहीं था? क्या रावण देवताओं की शक्तियों का स्वयमेव एकाधिकारवादी उपभोग नहीं कर रहा था? सौन्दर्य की ये सभी परिभाषाएँ रावण-राज में मूर्त होती थीं.

तो क्या यह कांड इसलिए सुन्दरकांड है कि यह रावण-राज के अंतर्गत लंका को वर्णित करता है? इस कांड के शुरू में ही कनक कोट विचित्र मणि कृत सुन्दरायत अति घना की पंक्ति है जिसमें सुन्दर शब्द का प्रयोग हुआ है. तो क्या लंका के प्रकट और बाहरी सौन्दर्य से प्रभावित होकर तुलसी बाबा ने इस कांड को यह नाम दिया? क्या वे इसकी क्रिस्टल कवरिंग से अभिभूत हो गए? क्या वे इसके खोखल से चमत्कृत हो गए? इसकी पैकेजिंग से मुग्ध हो गए? तो क्या तुलसी लंका दहन के माध्यम से सौन्दर्य नाश करवा रहे थे? वह कौन सा सौन्दर्य है जो नष्टकरणीय है? कैथरीन एन्ने पोर्टर ने कहा कि जीवन का वास्तविक पाप सौन्दर्य का दुरुपयोग और इसे नष्ट करना है तो क्या तुलसीदास राम के दास से सुन्दरकांड में ये पाप करवा रहे थे? सुन्दरकांड शीर्षक हमें इस अध्याय के ही नहीं तुलसी के भी सौन्दर्यशास्त्र (इस्थेटिक्स) पर चर्चा करने का मौका देता है.

देखें कि सुन्दरकांड में सुन्दर शब्द का प्रयोग ५ बार हुआ है. लंका के कोट या आवरण या क़िले को सुन्दर कहना इतनी बड़ी बात नहीं क्योंकि तुलसी इसी अध्याय की शुरुआत में इतनी ही सहजता से समुद्री पर्वत को भी सुन्दर कह देते हैं- सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर. पर्वत की सुन्दरता तो प्राकृतिक है, दुर्ग की सुन्दरता प्रसाधित (कास्मेटिक). कोट शब्द का प्रयोग बताता है कि यह तो 'स्किन डीप' सौन्दर्य है. मैं जान-

बूझकर कोट के अँग्रेजी अर्थ को भी शामिल करता जा रहा हूँ. तुलसी को अँग्रेजी नहीं आती थी लेकिन तुलसी की कालजयी कविता ने कुछ अपने अर्थ भी विकसित किए होंगे. आखिरकार नास्त्रेदमस के छंदों में भी ऐसे शब्द हैं जो उसके युग के नहीं, वर्तमान युग के अर्थों में ही सत्य सिद्ध होते हैं. पर्वत की सुन्दरता तो होमर के द्वारा दी गई सौन्दर्य की परिभाषा याद दिलाती है. प्रकृति का भव्य उपहार. लेकिन तुलसी प्रकृति के साथ-साथ प्रसाधन के सौन्दर्य को सौन्दर्य कहने का औदार्य क्यों दिखाते हैं. वे भी जानते हैं कि यह चमक-दमक मात्र है. शेक्सपीयर ने भी सौन्दर्य के इस रूप का वर्णन किया था- 'एक चमकदार दीप्ति जो क्षण में बुझ जाती है.' लेकिन इस कृत्रिम सौन्दर्य की अपनी नियति है. एक दहनीय नियति. सर्वेन्टीज ने उचित ही कहा था- 'सारा सौन्दर्य प्रेम को प्रेरित नहीं करता'. सुन्दरताएँ आँखों को खुश करती हैं लेकिन स्नेह को प्रवृत्त नहीं करतीं. तुलसी ने इस बाज़ारू सौन्दर्य को उस प्राचीन सभ्यता में भी रेखांकित किया है. उसे दो बार दोहराया है 'चउहट्ट हट्ट'. इसे ज़ोर देने के लिहाज़ से दो बार बजाया गया है. क्या रावण-राज में बाज़ार की शक्तियाँ (मार्केट फोर्सेज़) हावी थीं? क्या उन्हें भी

> *सर्वेन्टीज ने उचित ही कहा था- 'सारा सौन्दर्य प्रेम को प्रेरित नहीं करता'. सुन्दरताएँ आँखों को खुश करती हैं लेकिन स्नेह को प्रवृत्त नहीं करतीं. तुलसी ने इस बाज़ारू सौन्दर्य को उस प्राचीन सभ्यता में भी रेखांकित किया है. उसे दो बार दोहराया है.*

वैसा ही सैनिक समर्थन हासिल था वैसा ही सैनिक समर्थन हासिल था जैसे बुश के समकालीन अमेरिका में है जहाँ व्यापारिक हितों के लिए सैनिक हमले होते हैं? 'हट्ट' के तुरंत बाद 'सुभट्ट' को रखकर तुलसी क्या संकेत देना चाह रहे हैं? एक बार के लिए जान-बूझकर सुबट्ट और सुघट्ट जैसे वैकल्पिक प्रयोगों की उपेक्षा कर दें लेकिन ध्यान दें कि चउहट्ट से पहले वाली पंक्ति कनक कोट की क्यों है और उसके बाद की पंक्ति गज, बाजि, खच्चर, निकर, पदचर, रथ, जूथ अतिबल सेन के रूप में सैन्य शक्ति का वर्णन क्यों करती है. पुनः बाज़ार की ओर लौटें. बाज़ार चारों ओर क्यों है? बाज़ार की सर्वव्यापिनी सर्वग्रासी उपस्थिति हनुमान जैसे बारीक़ प्रेक्षक का ध्यान खींचेगी ही. वह कनक कोट भी कोई दुर्ग भर नहीं है. उसे समझने के लिए संस्कृत का वह श्लोक सहारा है : हिरण्मयेन पात्रेण गर्भेण सत्यस्यापिहितम मुखम्. सत्य का मुख सोने से ढँका हुआ है. लंका में सत्य के सूत्रधार विभीषण, माल्यवंत, मंदोदरी, शुक, त्रिजटा और अपहृता सीता हैं. लेकिन सोने का खेल जारी है. स्वर्ण मुद्राओं का मुद्राराक्षसी नाटक चल रहा है. वही हावी है, वही प्रभावी. ये शुभ सूत्र बिखरे हुए हैं. एंपायर ने देव शक्तियों को जीता हुआ है. तो सौन्दर्य है लेकिन सत् नहीं है. ब्यूटी विदाउट वर्चू की स्थिति है. सौरभहीन फूल जैसी. स्वर्णमाया ने ही सब कुछ ढाँक रखा है. बाज़ार के आगे कनककोट. पीछे है अतिबल सेन. क्या आपको उपनिवेशवादी आक्रामकों की पेटेन्ट कराई हुई शैली याद आती है? कि पहले प्रलोभन का स्वर्णाकर्षण खड़ा करो, फिर अपना बाज़ार फैलाओ और उसके पीछे सैन्य शक्ति की धौंस चलने दो. यह शैली राबर्ट क्लाइवों की थी. तुलसी रावण-राज में इसका संकेत कर गए थे. बाज़ार के पीछे एक डरावा. हाट और हाटक की जुगलबंदी. मार्केट का फंडा, साथ में डंडा. यह असाधारण मर्कट उस मार्केट को सबसे पहले चीन्हता है.

तो सुन्दरकांड का शीर्षक इसलिए नहीं पड़ा कि इसमें सुन्दर राम और सुन्दरी सीता की कथा है जैसा कि एक संस्कृत श्लोक में जताया गया है :

सुन्दरे सुन्दरो राम सुन्दरे सुन्दरी कथा.
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्..

अर्थात् सुन्दरकांड में राम सुन्दर है, कथाएँ सुन्दर हैं, सीता सुन्दर है, सुन्दर में क्या सुन्दर नहीं है. लेकिन इस भावुक व्याख्या से हमारा संतोष नहीं होता क्योंकि राम सीता तो पूरे रामचरितमानस में हैं और जहाँ तक कथा प्रसंग का सवाल है तो सिर्फ़ 'शत योजन विस्तीर्ण भीमदर्शन, महोन्नतरङ्ग समाकुल अगाध गगनाकार सागर' को लाँघने से लेकर श्रीराम को सीता संवाद सुनाना, राम के द्वारा हनुमान का आलिंगन, विभीषण की शरणागति आदि सभी कथाएँ तो सुन्दर हैं. लेकिन इसी तर्ज़ पर रामचरितमानस का हर प्रसंग सुन्दर कहा जा सकता है. राम जन्म प्रसंग, सीता-राम का परस्पर प्रथम दर्शन, केवट संवाद, भरत मिलाप आदि आदि किन-किन कथा प्रसंगों को हम सुन्दर न कहेंगे. कथा सौन्दर्य तो पूरी राम कथा में व्यापता है. इसलिए सुन्दरकांड में सुन्दर जब स्वयं प्रभु शिव के द्वारा वर्णित की जा रही इस कथा के बारे में कहा गया है : 'सावधान मन करि पुनि संकर/लागे कहन कथा अति सुन्दर' तो यह बात सिर्फ़ हनुमान-राम मिलन के सन्दर्भ में नहीं कही गई होगी. तुलसी या वाल्मीकि यह थोड़े कहना चाह रहे होंगे कि उस कांड के सिवा बाक़ी सारे कांडों में वर्णित कथा असुन्दर है.

न मुझे इस बात से संतोष होता है कि चूँकि त्रिकूटाचल के

तीन शिखर हैं, नील जिस पर लंका बसी है, सुबेल जो मैदान है और सुन्दर जिस पर अशोक वाटिका है तथा इस सुन्दर नामक शिखर पर ही सुन्दरकांड का चरित्र हुआ है इसी से इसका नाम सुन्दरकांड हुआ. दरअसल यह वही पारम्परिक स्थानवादी व्याख्या है जिसके तहत अन्य कांड हैं. लेकिन पं. श्री रामकुमार की यह व्याख्या मुझे इसलिए संतुष्ट नहीं करती क्योंकि सुन्दरकांड के सारे घटना प्रसंग अशोक वाटिका में नहीं हुए. दूसरे सुन्दरकांड की जो विशेष लोकप्रियता और महत्व स्थापना है, उसके चलते इसका नामकरण भी रूढ़िगत स्थानपरक रूप से नहीं किया जा सकता था. यह एक तांत्रिक प्रभाव रखने वाला अध्याय माना जाता है. जिस तरह से महाभारत में विराट पर्व महत्वपूर्ण माना जाता है उसी तरह से रामायण में सुन्दरकांड. अतः रूढ़ि इस प्रश्न का समाधान नहीं करती. शिखर के नाम का जहाँ तक सम्बन्ध है उस पर आचार्यों में मतभेद भी रहा. वाल्मीकि ने इसे महेन्द्राचल कहा है

कोऽपि लोके न मे वेग प्लवने धारयिष्यति
एतानहि नगस्यास्य शिलासंकट भाविनः .३६..
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च.
एषु वेग गणिष्यामि महेन्द्र शिखरेष्वहम .३७..

यहाँ महेन्द्र शिखर है. महेन्द्र शिखर कहने के बावजूद वाल्मीकि ने भी इसका नाम सुन्दरकांड रखा है. वाल्मीकि और तुलसी दोनों अपने-अपने सुन्दरकांड की शुरुआत हनुमान जी के समुद्र लंघन से करते हैं और अध्यात्म रामायण का सुन्दरकांड भी ऐसे ही शुरू होता है. लेकिन वाल्मीकि का सुन्दरकांड वहाँ समाप्त हो जाता है जहाँ हनुमान लंका से लौटकर राम को पूरा विवरण देते हैं. तुलसी के सुन्दरकांड में श्री राम का हनुमान को हृदय से लगाना, श्री राम आदि का वानर सेना सहित प्रस्थान, रावण की कर्तव्य निर्णय हेतु मंत्रियों से सलाह, राक्षसों का रावण को विश्वास दिलाना, विभीषण का सीता को लौटाने का अनुरोध, रावण के द्वारा विभीषण का तिरस्कार, विभीषण का श्री राम की शरण में जाना, भगवान श्री राम का शरणागत की रक्षा, रावण का शुक को दूत बनाकर भेजना, राम का समुद्र तट पहुँचना आदि भी शामिल हैं, जो वाल्मीकि ने युद्धकांड में शामिल किए हैं. ध्यान रहे कि अध्यात्म रामायण में भी सुन्दरकांड हनुमान जी द्वारा लंका से लौटकर राम को विवरण देने के साथ ही ख़त्म हो जाता है. यह भी ध्यान रहे कि तुलसी अध्यात्म रामायण पर कई जगह वाल्मीकिकृत रामायण से भी ज़्यादा निर्भर रहे हैं. वानर सेना का प्रस्थान, विभीषण का तिरस्कार, विभीषण शरणागति, सेतु बंध, रावण शुक संवाद आदि अध्यात्म रामायण में युद्ध कांड के अंग रहे हैं, किन्तु तुलसी इन्हें सुन्दरकांड में शामिल करते हैं.

तुलसी ऐसा कर क्या संकेत देना चाह रहे हैं? क्या वे सुन्दरकांड में सौन्दर्य की परिभाषा को भी इसी तरह विस्तार देना चाह रहे हैं? वे सौन्दर्य को नख-शिख वर्णन में वैसे ही नहीं देखते जैसे वाल्मीकि देखते हैं. सामान्यतः सौन्दर्य का अध्याय तो व्यक्ति के यौवन में खुलता है. जब सीता ने प्रथम बार राम को देखा था या राम ने सीता को जब पहले-पहल देखा. तब पंचवटी में पहुँचने पर भी प्राकृतिक सुषमा का प्राचुर्य सुन्दरता का अध्याय बन सकता था. लेकिन तुलसी और वाल्मीकि दोनों ही सुन्दरकांड का शीर्षक उस वक़्त देते हैं जब सीता माँ का पता लगता है और लंका का दहन होता है. यहाँ कर्म सौन्दर्य ही सौन्दर्य की वास्तविक पहचान के रूप में प्रकट हुआ है और हमें मोरमोंटेल की याद दिलाता है जो सौन्दर्य के मूल में उपयोगिता को मानता है. मेरी बेकर एडी ने कहा था कि सौन्दर्य का गुर है : कम भ्रम और अधिक आत्मा. हमारे दर्शन में भी इसीलिए सत्य को सुन्दर कहा गया. इस अध्याय में सीता का पता लगने, रावण को देखने का, लंका दहन आदि से जहाँ राम के पक्ष की बहुत-सी शंकाएँ समाप्त होती हैं वहीं विभीषण का पूरी तरह से मोहभंग हो जाता है. समुद्र की भी जड़ता टूटती है, माल्यवंत और शुक की भी आँखें खुल जाती हैं. इन सबको इस भ्रम भंग के बाद आत्मिक समृद्धि प्राप्त होती है. राम का मनोत्थान होता है. 'प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना'. विभीषण 'जे पद परसि तरी रिषि नारी' का ध्यान कर 'उर कछु प्रथम वासना रही - प्रभु पद प्रीति सरिस सो बही' से आत्मोद्धार करते हैं. 'हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी' की स्थिति को प्राप्त होता है और शुक ने भी 'रामकृपा आपनि गति पाई'. सभी की आत्मा में सौन्दर्य के उस रूप का संचार होता है जिसे हार्मनी कहते हैं. एलिज़ाबेथ कुबलेर रॉस ने कहा था कि सच्चा सौन्दर्य तभी देखा जा सकता है जब भीतर से प्रकाश हो. इन सभी की अन्तर्दृष्टि, और खुलती और विकसित होती है. तो यह सौन्दर्य शरीर की आँख से नहीं देखा गया है. आत्मा की आँख से देखा गया है. यह एक क्षण का इंद्रजाल नहीं है, यह एक स्थायी अनुभाव है.

प्राकृतिक सौन्दर्य भी क्या एक स्थायी अनुभाव नहीं है?

तो फिर 'सिन्धु तीर एक भूधर सुन्दर' में क्या अपर्याप्तता है जो उसे सुन्दरकांड के शीर्षक का आधार नहीं बनने देता? हनुमान ने इस भूधर को पहली बार देखा है, इसलिए उसके सौन्दर्य पर उनका ध्यान गया है अन्यथा यदि मनुष्य प्रकृति के उसी परिदृश्य को हर रोज़ देखे तो शायद कभी न देख पाए. प्राकृतिक सौन्दर्य की निरन्तरता उस सौन्दर्य पर से हमारी आँख हटा देती है.

इसलिए प्राकृतिक सौन्दर्य भी मनुष्य के लिए एक अस्थायी तिलिस्म है लेकिन आत्मा की आँख जिस सौन्दर्य को देखती है वह पृथ्वी पर ईश्वर की छाया और हस्तलिपि है. तुलसी सौन्दर्य को एक छवि की तरह नहीं, एक स्थिति की तरह पेश करते हैं. यदि यह छवि है तो भी यह तब दिखती है जब आप आँख बंद कर लें. यदि यह एक स्थिति है तो भी इसमें गति और स्पन्दन है. कर्म के कम्पन. तुलसी अपने सुन्दरकांड को इसीलिए जान-बूझकर कर्म संकुल बनाते हैं. पाँचवाँ अध्याय हाथ की पाँच उँगलियों का भी प्रतीक है. अपना हाथ जगन्नाथ. अपने पुरुषार्थ का विश्वास. नाथ देव कर कवन भरोसा. भाग्य के विरुद्ध पुरुषार्थ की प्रतीक पाँच उँगलियों का. सुन्दरकांड कर्म-सौन्दर्य का कांड है. यह पंचम अध्याय है.

सिन्धु के तीर पर खड़े होकर जिस विस्तार का अनुभव होता है उसी तरह का विस्तार सुन्दरकांड नामक इस शीर्षक में है जिसमें अर्थ विस्तृति का अनन्त सिन्धु है. इस अध्याय की शुरुआत के पहले कथा-प्रसंग भी सिन्धु-तीर पहुँच चुका है. रैंडम हाउस ने सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा यह कहकर दी है कि 'हैविंग अ सेन्स ऑफ़ द ब्यूटीफुल'. यह सुन्दर का बोध है लेकिन सुन्दर क्या है? हनुमान सुन्दरकांड में जब भूखे होते हैं तो उन्हें वृक्ष के फल भी सुन्दर लगते हैं- 'लागि देख सुन्दर फल रूखा'. यह सौन्दर्य की भूख (हंगर फॉर ब्यूटी) नहीं है. यह भूख के द्वारा कारित स्थिति है जब चाँद भी गोल रोटी की तरह नज़र आता है. यहाँ सौन्दर्य के लिए जान-बूझकर भूखी रहने वाली आधुनिकाओं की बात नहीं है कि जो डाइट कर रही हों. यहाँ तो उस कर्मवीर की बात है जो 'राम काजु कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम' की धुन में भूख-प्यास सब भूल जाता है. धूप के पर्वत पार करता है और माता सीता को मुद्रिका देकर जब अपना कर्तव्य पूरा कर लेता है तब जाकर उसे अपनी क्षुधाकातर हालत का ख़्याल आता है. यहाँ

> प्राकृतिक सौन्दर्य भी मनुष्य के लिए एक अस्थायी तिलिस्म है लेकिन आत्मा की आँख जिस सौन्दर्य को देखती है वह पृथ्वी पर ईश्वर की छाया और हस्तलिपि है. तुलसी सौन्दर्य को एक छवि की तरह नहीं, एक स्थिति की तरह पेश करते हैं.

आजकल के विकृत रूप से धनी वर्ग की लड़कियों में व्याप्त एनोरेक्सिया नर्वोसा जैसी सौन्दर्य-सचेत भूखहीनता की बात नहीं है. यह तो निरन्तर कर्मरत आदमी की क्षुधा है. यह वह सौन्दर्य-बोध नहीं जो भूखों के प्रति संवेदना शून्य बनाता है. यह वह भूख-बोध है जिसमें हर साधारण चीज़ भी ग्रहणीय और भूख के ही टर्म्स में सुन्दर नज़र आती है. हनुमान तो रूख (वृक्ष) के फल ही नहीं रूखे (रूक्ष) फल को भी सुन्दर मान लेंगे. वे एटकिंस की मिताहार वाली दुनिया के ठीक विपरीत ध्रुव पर खड़े हैं. यह मेहनतकश और कर्तव्यनिष्ठ आदमी की भूख है. चाहे मज़ाक में ही मार्क ट्वेन ने कहा हो कि भूख प्रतिभा की दासी है लेकिन प्रतिभाशाली की भूख का अपना सौन्दर्य है. एक मेहनतकश की भूख और कुंभकर्णी भूख दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है. लघु रूप लिए हनुमान क्या हैं? जो वास्तव में कनक भूधराकार सरीरा जैसे सौन्दर्य के स्वामी हैं, वे अपनी लघिमा में छोटे लोगों की उस साधारण क्षुधा का प्रतिनिधित्व कर लेते हैं जो महाकाय और भीषणाकार लोगों की अपरूप और अनन्त बुभुक्षा का विलोम है. वे फल भर से संतुष्ट हो जायेंगे. और ये कुंभकरण सरीखे लोग, ये उदर पिशाच देहंभर? इनकी भक्षण वासना की कोई सीमा नहीं. हनुमान जठराग्नि के कारण खाते हैं; ये गाफ़िल होने के लिए. चीन में भी एक वानरराज की पौराणिक कथा है जब ३००० साल में एक बार होने वाले त्योहार में देवताओं द्वारा खाने के लिए नहीं बुलाए जाने पर न केवल वह भोज के लिए बना सारा भोजन और सुरा स्वयं पहले ही पी जाता है बल्कि अमरता की गोलियाँ भी खा जाता है. हमारे हनुमान का क्रोध ऐसा नहीं है. वे तो बस फल से ही अपनी भूख मिटा लेंगे. उन्हें अमरता की गोलियाँ खाने की ज़रूरत नहीं है. वे हैं ही अमर. मज़े की बात यह है कि चीनी वानरराज ७२ भिन्न रूप धारण कर सकता है, हनुमान भी मनचाहा रूप धर सकते हैं. यह भी कि वह चीनी वानरराज की १०८००० लि (कोस या किलोमीटर जैसी दूरी मापने की चीनी इकाई) कूद सकता है और हनुमान भी समुद्र कूद के लिए जाने गए. बहरहाल चीनी वानर की तुलना में हनुमान की भूख अधिक सहज है- और सुन्दर भी क्योंकि वह गाढ़ी मेहनत की कमाई है. जो बात सुन्दरकांड हमें बताता है वह यह कि सच्चे मेहनतकश की भूख विद्रोहात्मक होती है. जोहानन मोस्ट कहते थे कि यह भूख का कोड़ा ही है जो ग़रीब को झुकने पर मजबूर करता है. धन के वहशियों के सामने जीने के लिए उसे स्वयं को प्रतिदिन प्रतिघंटे बेचना पड़ता है. मोस्ट के इस कथन में प्रयुक्त यह 'बीस्ट ऑफ़ प्रॉपर्टी' शब्द-खंड याद रखें.

हनुमान जैसे भूख कमाए हुए मेहनतकश झुकते नहीं हैं धनपशुओं के सामने. बीस्ट ऑफ़ प्रॉपर्टी के सामने. वे क्रांति नहीं तो उपद्रव खड़ा कर देंगे. अशोक वाटिका में उनका

> सौन्दर्य को आधुनिक विद्वान भी आंख की जगह हाथ में देख रहे हैं. जस्टिन विंकलर ने 'द आई एंड द हैड : द आइडिया ऑफ़ एन इस्थेटिक्स ऑफ़ वर्क' नामक एक लेख में कहा है : हाथ का सौन्दर्यशास्त्र वस्तुतः कर्म का सौन्दर्यशास्त्र है.

उत्पात मिखाइल साकाश्विली के उस कथन को सच सिद्ध करता है कि, 'यदि लोग भूख से तड़पते रहे तो कोई शान्ति स्थिर बनी नहीं रह सकती.' मनुष्यता का इतिहास भूख विद्रोहों से भरा हुआ है. फ्रेंच क्रांति के समय मेरी एंतोनिएत के सामने प्रदर्शन व १७ सितम्बर १९११ को उत्तर-पश्चिमी वियना के भूख विद्रोह से लेकर २६ दिसम्बर १९८१ के नाइजीरिया के भूख विद्रोह या ४ दिसम्बर १९९७ के बेरुत के भूख विद्रोह तक ढेरों उदाहरण अटे पड़े हैं. हनुमान का हुल्लड़ भी विप्लव में परिणत हो जाता है. अशोक वाटिका समरांगण बन जाती है. सुन्दरकांड का रचयिता किसी साधारण टंटे में हनुमान को नहीं उलझाता. वहां तो विग्रह बढ़ता जाता है और तुमुल युद्ध का रूप ले लेता है. हनुमान भूख हड़ताल की बात नहीं करते, वे हंगर रिवोल्ट करते हैं. शायद हमें यह बताने के लिए कि क्रांति भूख के तर्क का सुन्दरतम फल है. क्रांति शोषण के पूरे ढांचे को झुलसाती है, सो लंका दहन होता ही है. यजुर्वेद में क्या यही घोषणा नहीं की गई थी? 'रक्षः प्रत्युष्टं/प्रत्युष्टा अरातयो/निष्टप्तं रक्षो/निष्टप्तां अरातयः' कि राक्षस (दुष्ट) झुलस गए हैं, अनुदार कृपण और मक्खीचूस झुलस गए. राक्षस भस्म हो गए. राक्षस वह है जिसके कारण समाज और देश में क्षीणता तथा दुर्बलता आती है- क्षरतीति राक्षसः. यही स्थिति जानबूझकर प्रयुक्त अराति शब्द के साथ है जिसके अर्थ हैं जो दान नहीं देता हो, जो कंजूस हो, कृपण हो. हनुमान कहीं पृथ्वी का क्षरण करने वाले और पूंजी संकेन्द्रण करने वालों को क्रांति की लपटों में झुलसा रहे होंगे. इसी यजुर्वेदी मंत्र में इसके तत्काल बाद कहा गया है कि "उरु अन्तरिक्षं अन्वेमि" (विस्तृत अंतरिक्ष में मैं प्रवेश करता हूं). इस पूरे मंत्र की कुंजी ये अंतिम तीन शब्द ही हैं. अनन्त अन्तरिक्ष की शक्तियों का अन्वेषण करने की योग्यता मनुष्य को कैसे प्राप्त होती है? क्या हनुमान के आकाश गमन का स्थूल संकेत करने वाली नहीं हैं, ये यजुर्वेदी पंक्तियां? ये क्रांति के बाद आने वाले संकुचन, अधिनायकत्व, तानाशाही, क्रूरता का आदर्श नहीं बतातीं ये क्रांति के सही आदर्श को बताती हैं : 'अपने सुख को विस्तृत कर लो/सबको सुखी बनाओ' वाले आदर्श को. यहीं हनुमान की क्रांति पार्थिव या लौकिक क्रांतियों से भिन्न है. वह अन्तरिक्ष की विस्तृति और औदार्य का आदर्श रखती है. यह मंत्र आगे और चलता है औ बार-बार मुझे हनुमान के लंका दहन की याद दिलाता है. धूः असि धूर्वन्त धूर्व तं धूर्व यः अस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वाम : 'हे मानव तू भस्म कर देने वाला- (या) विनाशक- है. विनाश करने वाले का तू विनाश कर. उसका विनाश कर जो हमारा विनाश करता है, जिसको हम सब नष्ट करना चाहते हैं, उसको विनष्ट कर'. और लंका धू-धू करके जल उठती है. यजुर्वेद के इतने शुरू में आए ये मंत्र सुन्दरकांड के सुन्दर रूपक को समझने में हमारी मदद करते हैं. जो हनुमान 'उरु अन्तरिक्षं अन्वेमि' हैं- अर्थात् विस्तृत अन्तरिक्ष में अनुकूलतापूर्वक चले जाते हैं, उन्हीं के लिए इसके तुरंत बाद आए शब्द शोभते हैं :- 'पृथिव्याः नाभौ अदित्या : उपस्थे त्वा सादयामि' (पृथ्वी के मध्य में स्वतंत्रता के निकट तुझे बैठाता हूं.) यजुर्वेद का महर्षि इस बात पर खुशी व्यक्त करता है कि 'रक्षः अवधूतं अरातयः अवधूताः' कि क्षरण करने वाले और कृपण तथा अनुदार दूर हुए.' लेकिन इसके बाद के शब्द विशेष महत्व के हैं. "अदित्याः त्वक् असि/अदितिः त्वा प्रतिवेत्तु." स्वाधीनता की त्वचा है तू और स्वाधीनता तुझसे परिचित हो- ये दो बातें महत्वपूर्ण हैं. मनुष्य अदिति की त्वचा है- अदिति जिसका खंडन नहीं हो सकता, जो अविभाज्य है, जो अदीन है, जो स्वतंत्र है. हनुमान की कुल कोशिश इसी अदिति को लोकोपलब्ध बनाने की है. उनका सौन्दर्य सम्पूर्णता में है, विभाजन में नहीं.

सौन्दर्य को आधुनिक विद्वान भी आंख की जगह हाथ में देख रहे हैं. जस्टिन विंकलर ने इसी साल लिखे 'द आई एंड द हैड : द आइडिया ऑफ़ एन इस्थेटिक्स ऑफ़ वर्क' नामक एक लेख में कहा है : हाथ का सौन्दर्यशास्त्र वस्तुतः कर्म का सौन्दर्यशास्त्र है : क्रियान्वयन का. सुन्दरकांड को तुलसी ने कर्म-सघन बनाकर सौन्दर्य को एक गत्यात्मकता में देखा है. यहां कार्य है और प्रक्रियाएं हैं. स्थैतिक कुछ भी नहीं. जड़ कुछ भी नहीं. दमन जब तक जारी है तब तक हनुमान या राम चुप कैसे बैठेंगे. जड़ कैसे रहेंगे. वायुपुत्र के पास पवन-वेग न होगा? वे तूफ़ान पैदा नहीं करेंगे? वे 'चले मरुत उनचास' वस्तुतः गति की अनेकताएं हैं. लेकिन इन सबको संघनित, संकेन्द्रित और संचालित तो राम की प्रेरणा ही करती है.

सुन्दरकांड में सुन्दर शब्द तब भी आया है जब हनुमान जी की टपकाई हुई मुद्रिका को सीता माँ देखती हैं. 'तब देखी मुद्रिका मनोहर राम नाम अंकित अति सुन्दर'. यहां मुद्रिका को तो खैर मनोहर कहा ही गया है, अंकित रामनाम को अति सुन्दर कहा गया है. भगवान के नाम से सुन्दर क्या होगा? रामनाम वरानने. बुधकौशिक ऋषि बता ही गए थे. इस्लाम में अल्लाह के ९९ नाम

हैं. प्राचीन मिस्री नामों में ईश्वर का नाम शामिल करने की परम्परा थी- तूतनखामेन (आमेन की जीवित मूर्ति) और खेनेमेतामेन (आमेन से जुड़ा हुआ) जैसे नाम. आमेन ॐ का ही अपभ्रंश है. मंत्र ८-१-९ में डेविड पहला छंद यह बोलते हैं Lord, our lord, how majestic is thy name in all the earth. यह बात अलग है कि हमारे यहां रामनाम का जाप इतना महत्वपूर्ण माना गया जबकि हिब्रुओं में उस ईश्वर के नाम पर इतनी श्रद्धा की जाती है कि उसे सार्वजनिक वाचन में उच्चारित तक नहीं किया जाता. सीताजी इतने दिनों से राम की छवि मन में धारे हैं, लेकिन राम का रूप और छवि नहीं देख पा रहीं. नाथ सो नयनहि को अपराधा. ऐसे में रामनाम का मिलना. इसकी सुन्दरता तब समझ में आती है जब तुलसी की ही अन्यत्र कही गई पंक्तियां ध्यान में रखें- लखि यहि रूप नाम आधीना/रूपज्ञान नहि नाम बिहीना. जब नाम मिल गया है तो रूप देखना सुनिश्चित हो गया. कबीर क्या कहते हैं : 'जबहि नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास/मानो चिनगी आग की परी पुरानी घास'. यह रामनाम से अंकित मुद्रिका अशोक वाटिका में गिरी है. अब पाप के नाश का समय आ गया. अब अशोक वाटिका तो क्या लंका भी वैसी नहीं रह जाएगी. अब तो लंका में आग की चिनगारी भड़केगी ही. हनुमान इस आग के अग्रदूत हैं, यह परिवर्तन की आग है और जागृति की ज्योति भी. तुलसी ने अन्यत्र सुझाया था : रामनाम मणिदीप धरु, जीह देहरी द्वार/तुलसी भीतर बाहिरेहु जो चाहसि उजियार.

कई लोगों को नाम के प्रति यह श्रद्धा विचित्र लगती है. नाम तो एक लेबल है पहचानने के लिए. लेकिन यदि वाक़ई नाम में, शेक्सपीयर के मुताबिक, कुछ नहीं रखा क्योंकि गुलाब को किसी भी नाम से पुकारो वह खुशबू तो वैसी ही देगा, तो फिर ईश्वर को बाइबल में आब्रम, जिसका मतलब होता है हाई फादर, का नाम बदलकर अब्राहम (फादर ऑफ़ मल्टीट्यूड) करने की जरूरत क्यों आन पड़ी (जेन १७, ५)? जेकोब (हील कैचर) का नाम बदलकर ईश्वर ने इसरायल (वह भगवान की तरह शासन करेगा) क्यों कर दिया (जेन ३२/२८)? भारत में नाम एक ही हो, यह आग्रह नहीं रहा. विष्णु सहस्रनाम विष्णु भगवान के हजार नाम बताता है. दुर्गा के १०८ नाम चलते हैं, द्वादश नाम वाले देवताओं की भी बहुसंख्या है. इन सबसे संकेत यही दिया जा रहा है कि नाम तो अभिधान है. वहीं पर अटककर नहीं रह जाना. भगवान की ब्रांडिंग कभी नहीं हो सकती.

प्राचीन मिस्री नामों में ईश्वर का नाम शामिल करने की परम्परा थी- तूतनखामेन (आमेन की जीवित मूर्ति) और खेनेमेतामेन (आमेन से जुड़ा हुआ) जैसे नाम. आमेन ॐ का ही अपभ्रंश है. मंत्र ८-१-९ में डेविड पहला छंद यह बोलते हैं Lord, our lord, how majestic is thy name in all the earth.

इसलिए तुलसीदास भी कोई डॉग्मेटिक बात न कहकर मात्र उसके अति सुन्दर होने की बात कहते हैं. बाइबल का छंद ५२ और ९ एवी कहता है- I will wait on thy name for (it is) good before the saints. सीता के लिए, उनके द्वारा प्रतीक्षा सहन करने के लिए रामनाम मुद्रिका के रूप में सामने सरकाया जाता है. छंद ३३/२१ ए.व्ही. बाइबल में कहा गया कि for our heart shall rejoice in him because we have trusted in his holy name. सीताजी का जीवन भी रामनाम में विश्वास के ही सहारे चल रहा है और चलेगा. लेकिन बाइबल की तरह तुलसी ईश्वर के नाम को भीषण (awesome), उदात्त (exalted), सम्माननीय (honourable) अच्छा एवं महान, शुद्ध एवं पवित्र, अनुपेक्षणीय, भव्य, विश्वसनीय (ट्रस्टवर्दी) आदि नहीं बोलते हैं. वे उसे बस सुन्दर बोलते हैं. सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति अमर व्याख्या सुधा में इस प्रकार है : यद्वा सु उनत्ति चित्त द्रवीकरोति. उन्दी क्लेदने. सुन्दर यानी जिससे चित्त द्रवित हो जाए. सीता को रामनाम इसी रूप में सुन्दर लगता है, अति सुन्दर क्योंकि वह उनके चित्त को द्रवित करता है. इसलिए सुन्दरता कोई वस्तुनिष्ठ चीज़ नहीं है. सीता भी मुद्रिका में रामनाम के अंकन-सौन्दर्य से, तक्षण से प्रभावित नहीं हैं. वे प्रभावित हैं क्योंकि यह उनके हृदय, उनके चित्त का मामला है. इसलिए तुलसी रामनाम के लिए अन्य ऊपरिलिखित बाइबल जैसे विशेषणों का उल्लेख न कर उसे अति सुन्दर मात्र कहते हैं. यानी रामनाम उनके लिए फ्लूक मात्र नहीं है. वह भी उनके सौन्दर्यशास्त्र का हिस्सा है. जर्मन शब्द asthetisch या फ्रेंच शब्द esthetique दोनों ही ग्रीक के जिस शब्द से बने हैं उसका अर्थ होता है संवेदनशील. संवेदनशीलता के बिना कोई इस्थेटिक्स सम्भव नहीं. इस्थेटिक का विलोम अनेस्थेटिक है जिसका अर्थ होता है इंद्रियों को विमूर्छित करने और सुलाने वाला. इस हिसाब से सौन्दर्य वह है जो जागृति और स्फुरण पैदा करे- रामनाम अंकित अतिसुन्दर. मुद्रिका सीता में जैसे प्राण फूँक देती है. वे जो आत्महत्या का विचार कर रही थीं; सहसा सप्राण, सस्पन्द, सस्फूर्त हो उठती हैं. मरुतनन्दन हैं हनुमान. वही लाते हैं सीता के मुमुर्ष जीवन में प्राणवायु (ऑक्सीजन). हनुमान को वायुपुत्र के रूप में देखिए. सुनिए वह रामकथा जो वे सीता को सुनाते हैं और उसके परिप्रेक्ष्य में

डाली की विंड नामक इस कविता को पढ़िए:

"Have you ever listened to the wind
The stories that it tells
can mean many things
And soothe the soul as well
It whispers in the trees
And rustles the grass
It tips the flowers

वायुपुत्र सीता के लिए नई हवा लेकर आए हैं, वह जो उन्हें लोरी से भी मधुर रामकथा सुनाती है. पेड़ों और पत्तियों की सरसराहट. कहानियां सुनाती है पवन आती-जाती. यहां पवनपुत्र कहानी सुनाते हैं.

ऐसा नहीं है कि सुन्दरकांड में रूप सौन्दर्य को नज़रअंदाज़ किया गया है. लेकिन वहां अब इसका प्रत्यक्षीकरण भी एक दर्शक को नहीं होता, एक दृष्टा को होता है. पूरे अध्याय में बल अब एक यथार्थ पर है. वास्तविकता के उद्‌घाटन पर. हनुमान के बारे में भी उनका आभासित रूप संतुष्ट नहीं करता. जो रूप वाक़ई कन्विंसिंग है वह है 'कनक भूधराकार सरीरा/समर भयंकर अति बल वीरा.' यह हनुमान का मनोभौतिक (साइको-फ़िज़िकल) रूप है. उनकी चेतना का प्रतिनिधि. कनक कोट को भेद ही वही सकता है जो कनक भूधराकार हो. यह कोई मांसपेशियों का प्रदर्शन नहीं है. हनुमान कोई मि. यूनिवर्स रोज़र वाकर, स्टीव सिंटन या बिल पर्ल थोड़े हैं? या वे मि. ओलंपिया डोरियन येट्स या टोनी कोलमेन जैसे लगते हैं? हनुमान लघु से विराट हो लेते हैं- इसके पीछे लघु की वरिमा के हज़ार रूपक हैं. हनुमान को दारासिंह से अभिनीत करवा लें लेकिन उस युवा के मसल-मेनिया को एनाबोलिक स्टीरियोइड्स को लेने की प्रेरणा न दें जो इस तरह के सतही चित्रण से भ्रमित हो जाता है. क्या हनुमान का डीलडौल (फ़िज़िक) सीता मां को भरोसा दिलाएगा? वह सांचे में ढला शरीर नहीं है. वह कसौटी पर कसी काया है. वह कोई शरीर सौष्ठव की नुमाइश नहीं है. रुद्र की रौद्रता का प्राकट्य है उसमें.

इसी तरह से राम के बारे में भी प्रकट का प्रत्याख्यान है. तात राम नहिं नर भूपाला/भुवनेस्वर कालहु कर काला. राम की अभिरामता के बारे में जाना तभी जा सकेगा जब किसी काकपेय कोशिश की जगह सच्चा संदर्शन और समालोकन हो. विभीषण का भी राम की रुचिरता के बारे में विमर्शण पूर्व से ही स्वस्थ है. इसके बावजूद जब वास्तव में राम के आमने-सामने होकर वे उन्हें देखते हैं तब की बात ही और है : रहहु ठठकि एक टक पग रोकी. तब भगवान की विभाश्री और रूपमत्ता की सौन्दर्यानुभूति का जादू चढ़ता है. यानी भगवान का अनुचिन्तित और अनुध्यात सौन्दर्य ज्ञान भी वैसे द्रवित नहीं करता जैसे साम्मुख्य और सामीप्य का. वही उपनिषद है. भगवान के पास बैठना. तो सच्चा सौन्दर्य सतही और छिछली इंप्रेशनिस्टिक आदतों में जैसे नहीं है वैसे ही कल्पना और अनुचिन्तन के भी उधर है. भूपाला होना राम की असली पहचान नहीं है. वे पद उपाधि और आसन से महत्तर हैं. उनके वास्तविक सौन्दर्य की पहचान करने में ये सब चीज़ें काम नहीं आएंगी.

और सीता का सौन्दर्य? यह भी पहले जैसा नहीं है : कृस तनु सीस जटा एक बेनी. दुबला शरीर. सिर पर जटाओं की एक लट. जैसे एक ज्योत जल रही हो. दत्तचित्त और एकाग्र. जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी. यह वह समय है जब शरीर अत्याचार आकुलित अवस्था में है. सीता मां की तनिमा अपने सहज स्वरूप में नहीं है. वे कृशकाय हो गई हैं. लेकिन दुःखों को सहन करके ही अब उनका वास्तविक सौन्दर्य निखरा है. उनकी आत्मा की उजास उनके चेहरे पर है. केश केश न रहकर जटा हो गए हैं. तपस्विनी का यही रूप, जिसमें वेणिनी सीता अब चोटी भी नहीं करती, पढ़ते हुए अक्सर मुझे गोदान की धनिया याद आ जाती है. उलझे-चिपके रूखे केश. सीता के इसी रूप से कष्ट भोगती कितनी ही भारतीय स्त्रियों ने तादात्म्य किया है. सुकेशिनी सीता की अब यह हालत है. लेकिन सुन्दरकांड की सीता तुलसी के इसी सौन्दर्यशास्त्र की गवाह है. इसी सीता से हिन्दुस्तानी नारियों का साधारणीकरण हुआ है. सड़क पर गिट्टी तोड़कर जो मज़दूरिन अपने माथे से पसीना पोंछती है उसकी स्वेद बूँदों में सीता माँ का तप ही चमकता है. जिस तरह से क्राइस्ट ने हम लोगों की ओर से दुःख भोगा, उसी तरह से सीता ने भी. सीता हवाई राजकन्या नहीं हैं. वे जन्म से ही ज़मीन से जुड़ी रही हैं. वनवास में भी वे सहज हैं. अशोक वाटिका में राम के बिछोह और रावण की यंत्रणा ने उनकी काया को कृश बनाया लेकिन आस्था को दृढ़तर. सीता का यही रूप भारतीय चेतना को हमेशा अभिभूत करता रहा है. जब सारे अलंकरण ख़त्म हो गए हों, जब श्रृंगार-प्रसाधन न बचे हों, आमंडन और सजावट कहीं से कहीं तक न हो, उस ऋजुता और सादगी में, उस सरलता और साधारणता में सीता का सुन्दरकांड प्रतिफलित होता है. जिन्होंने सौन्दर्य और सौन्दर्यीकरण का फ़र्क़ ख़त्म कर दिया है, जो बनी-ठनी और लदी-फदी रहने में अपनी सुन्दरता के प्रति आश्वस्त रहती हैं, उन लोगों और उन स्त्रियों ने बाज़ार भले ही पनपाया हो, फ़ैशन टेक्नोलॉजी के राष्ट्रीय संस्थान भले ही खुलवाए हों, लेकिन 'धूल भरे मैले से आँचल' की सर्वहारा और विपन्ना भारतीय स्त्री को आश्वासन सीता के इसी सौन्दर्य से मिला है जो बहिरंगताओं (externalities) और निर्भरताओं (dependencies) से मुक्त है. सीता का यह सुन्दरकांड एम्बेलिशमेंट इंडस्ट्री के प्रति-ध्रुव की तरह हमारे सामने आता है. हमारे आधुनिक समय में

ृंगार जो एक रस था, एक उद्योग बना दिया गया है. सौन्दर्य से आनन्द पैदा हो न हो, पैसा ज़रूर पैदा होना चाहिए. हम बाज़ार के लिए विश्वसुन्दरी घोषित करते हैं, हमारी ब्रांड ऐम्बैसडर बनने के लिए, कुछ माल बिकवाने के लिए. जब कोई देश संस्कृति से 'अर्थव्यवस्था' बनता है तो ृंगार और अलंकरण काव्यशास्त्र से निकलकर औद्योगिक संरचनाएं हो जाते हैं. नक़लीपन के रूप रचना ही मायावी राक्षसों के कौशल हैं.

सुन्दरकांड में सीता के सौन्दर्य का यह तप-तेज़ वाटिका के एकान्त में ज्योति की तरह है. तुलसी ने इस सौन्दर्य की कोई सार्वजनिक अपोत्तेजना (पैंपरिंग) नहीं की है. यह सौन्दर्य बुलबुले का बोध नहीं है, ब्यूटी बबल जो आजकल ब्रह्मांड और विश्व की कुमारिकाओं के बीच फूटते रहते हैं. आजकल की सौन्दर्य प्रतियोगिताओं की तरह सौन्दर्य को तुलसी चमड़े के चिकनेपन, चीक बोन की ऊंचाई, नाक के उभार, आँखों के बीच की स्पेसिंग, ओंठों के आकार या स्तनों के उभार में नहीं देखते. यह काम रीतिकाल इस्थेटिक्स में किया गया है और सौन्दर्य स्पर्धाएं समकालीन सभ्यता का रीतिकालीन खुमार ही हैं. यह सुन्दरकांड तो तब घट रहा है जब ऐन्द्रिक प्रत्यक्ष (सेंस पर्सेप्शन) सरासर ग़ैरमौजूद है. भगवान राम सीता को देख ही नहीं पा रहे हैं. यों तुलसीदास ने सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा को ही सर के बल खड़ा कर दिया. अलेक्जेंडर बोम्गार्टन (१७१४-१७६२), जिसने पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र की स्थापना की, के अनुसार तो यह सेंस पर्सेषन का विज्ञान है. लेकिन तुलसी इस कांड में सौंदर्य को शरीर के हार्डवेयर की जगह अन्तरानुभूति के सॉफ्टवेयर की तरह व्यवहृत करते हैं. लोगों ने सौन्दर्य को फिटनेस में घटा दिया है. ब्रेट कुक और फ्रेडरिक टर्नर जैसे साहित्य-समीक्षक सौन्दर्य के संबंध में जिस 'बायो-पोयटिक्स' की बात करते हैं, उनके लिए सुन्दरकांड एक प्रति-सैद्धांतिकी है. रूप तो हनुमान ने सुन्दरकांड में अनेक धरे हैं. उसके माध्यम से तुलसी सौन्दर्य-संवेदना में रूप के आग्रह को ख़ारिज़ ही कर रहे हैं. बल्कि वे रूप के अवबोध में हमारी दृष्टि की सीमाओं का संकेत भी करते हैं. हम अणु को नहीं देख पाते जबकि रूप अणुओं का ही सम्मिलन है. जब हनुमान मसक समान रूप धरते हैं तो उनका आण्विक अस्तित्व उनका लंका-विचरण सुगम बना देता है. लंकिनी उसे भी पहचान कर अपनी आण्विक दृष्टि-सामर्थ्य का परिचय देती है और अपने प्रहरी होने को सार्थक करती है. हनुमान का मुष्टि-आघात बताता है कि रूप भ्रम है, लंकिनी पर्सेप्चुअल मिस्टेक का फल भुगतती है. सुन्दरकांड में रूप को प्रतीयमान बताकर तुलसी ने सौन्दर्य के एसेंस की ओर हमें प्रवृत्त किया है. वह सौन्दर्यसार देह-विषय की एकांगिकता में नहीं है, वह एक बहुपक्षी (मल्टीमोडल) उपस्थिति है. हनुमान वानर ज़रूर हैं लेकिन वोल्फगैंग वेल्श की 'एनीमल इस्थेटिक्स' वहां काम नहीं आएगी. हनुमान सीता को देखते हैं तो सीता एक तरह के संघात (ट्रामा) में हैं- एक ऐसे अनुभव में जिसमें आत्महत्या की प्रबल प्रेरणा है. अभी-अभी जान से मारने की धमकी देकर रावण गया है, राक्षसियां अलग अलग तरह से यंत्रणाएं दे रही हैं. सीता बुरी तरह से हिल गई हैं और उनका प्रकृत संतुलन (जिसे आज की मनोचिकित्सकीय शब्दावली में Homeostasis कहते हैं) बहुत डगमगाया हुआ है, ऐसे में रामनाम की 'सुन्दर' मुद्रिका उन्हें उस ट्रामेटिक स्ट्रेस से बाहर निकालती है. उस मुद्रिका से जो आशा और आश्वासन की ऊर्जा उन्मुक्त होती है, सीता धीरे-धीरे अपने केन्द्र में वापस लौटती हैं. हिस्टीरिया, जिसमें वे आग पाने के लिए त्रिजटा ही नहीं, चन्द्रमा तक से अपेक्षा करने लगती हैं; को हिस्ट्री से उपचारित करते हैं हनुमान. मुद्रिका देखकर याद चला आता है सब कुछ. उस याद में एक अलग आग है, एक अलग ऊष्मा. जीवनदायिनी.

तो तुलसी सुन्दरकांड में सौन्दर्य का एक नया अवबोध रचते हैं. रूप की रीतिकालीन समझ वालों के लिए सुन्दरकांड का रूपशास्त्र एक लगातार स्मरणी है. रिमाइंडर है. यह एक कष्ट में कमाई कमनीयता है. कभी इसकी परीक्षा भयंकर समर में है. कभी अत्याचारी शासक की उत्पीड़ा (टॉर्चर) परिसर में. कभी आसन्न राज्यारोहण से रातो-रात विपन्न होकर ज़िन्दगी के जंगलों में भटकन चुनने में. हेनरी थोरो ने सौन्दर्य के लिए जिस मॉरल टेस्ट की बात कही थी, तुलसी उसी नैतिक परीक्षा को सुन्दरकांड में संकेतित करते हैं. इसी से सुन्दर का उनका कांड या प्रसंग राम-सीता के प्रथम दृष्टया प्रेम के वक़्त न आकर इस परिपक्व तपःपूत स्थिति में आता है. सीता का तप तो है. रावण राम-लक्ष्मण को भी तपस्वी ही मानता है : मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती. इसी रूप में रामावतार के परशुराम के बाद आने का औचित्य प्रमाणन होता है. परशुराम ब्राह्मण हैं. लेकिन कर्म क्षत्रियों के हैं. राम क्षत्रिय हैं लेकिन निर्वेद तपस्वियों का सा है. लंका के उस बाहरी सौन्दर्य के पीछे अतिशय दर्प और असहिष्णु आचरण है. श्री राम के इस आंतरिक सौन्दर्य के पीछे उनका तप है. सौन्दर्यशास्त्र के संस्थापक बोम्गार्टन ने जिस सेंसुअस कॉग्नीशन (ऐन्द्रिक अवधान) की बात कही थी, १८वीं शती के अंत में कांट ने उस सौन्दर्य-बोध को ऐन्द्रिक की जगह अवधारणात्मक बना दिया. हिन्दी में तुलसी उनसे दो शताब्दी पूर्व यह काम सुन्दरकांड के मार्फत कर रहे थे. शिलर ने सौन्दर्यशास्त्र को जीवन की कला (Art of life : Labenskunst) के रूप में देखा था या मार्कुस ने उसे एक नई सामाजिक संवेदनीयता की तरह. तुलसी सोलहवीं शती में ही सौन्दर्य की गतानुगतिकताओं से हटकर इन आयामों की ओर देखने लगे थे. ■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

वेद की कविता

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

यस्यां वेदिं परिगृहणन्ति भूम्यांयस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्घ्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्
सा नो भूमिर्वर्धयतद् वर्धमाना।१३।

यज्ञ मंडप वेदिकायें पूर्व में जिस भूमि पर
रचकर प्रथम
तत्ववेत्ता प्रगतिकामी ऋषि, मनीषी
बैठ आहुति दान करते
भूमि वह अब हमारी
यश, कीर्ति का
नित करे संवर्धन.

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन
तं नो भूमि रन्धय पूर्वकृत्वरि।१४।

द्वेषरत तुमसे धरणि
सह सैन्य जो करता चढ़ाई
दास जो है चाहता तुमको बनाना
और हत्या आदि करता स्वार्थ प्रेरित
नाश उसका महादेवी
पूर्व ही कर्तव्य तेरा.

त्वज्जातास्त्वयिं चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पद,
त्वेमे पृथिवि पञ्च मानवा यंभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।१५।

तुम्ही से उत्पन्न
तुम पर वास करते
मनुज द्विपद
चार पद सब धारती तुम
और पोषण आदि करती
उदित रवि की अमृत किरणों से जगे हम
मनुज
सेवा चाहते करना तुम्हारी.

ता नः प्रजा सं दुहतां समग्रा वाचो
मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।१६।

प्रजा हम सब तुम्हारी
पृथिवी
मधुरतम बोलें
हमें वह शक्ति दो जिससे सदा
मधुर, प्रिय वचन
हम बोलें परस्पर.

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं
पृथिवीं धर्मणा धृताम्
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।१७।

वनस्पतियों, औषधी का स्रोत सब
सुस्थिर धरा
धर्म, धन, मंगल भवन तेरा
सदा ही हम तुम्हारी
करें सेवा.

महास्त्सवेन्द्रो महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे
महसस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि
मा नो द्विक्षत कश्चन।१८।

विपुल गृह तुम एक
हे विपुला धरा
विस्तार वाली
वेग तेरा प्रबल
तेरा प्रबल कम्पन, प्रबल गति है
प्रबल है उत्साह
संरक्षित सुरों से
सदा तुम स्वर्णिम धरा उबारो हमें
प्रतिषोध, कटुता से.

■

(क्रमशः)

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.

सम्पर्क : om@ramacharit.org

कौन बनेगा रामभक्त

१. राजा दसरथ के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किस ऋषि ने किया ?
अ) वशिष्ठ
ब) विश्वामित्र
स) श्रृंगी
द) नारद

२. जब रामजी बनवास गए तब भरत कहाँ थे ?
अ) सुसराल
ब) ननिहाल
स) गुरुगृह
द) विश्वामित्र के आश्रम

३. चित्रकूट किस नदी के किनारे था ?
अ) तमसा
ब) मन्दाकिनी
स) यमुना
द) गंगा

४. बाली ने मायावी से युद्ध के लिए जाते समय सुग्रीव को कितने दिन प्रतीक्षा करने को कहा ?
अ) १० दिन
ब) १५ दिन
स) एक मास
द) एक वर्ष

५. विष्णु के वामन अवतार में किसने उनकी सात प्रदक्षिणा की थीं ?
अ) वलिराजा
ब) जामवंत
स) लक्ष्मी
द) गणेशजी

६. रमा किसका अन्य नाम है ?
अ) राम
ब) लक्ष्मी
स) पार्वती
द) सरस्वती

७. विभीषण ने रामजी से मिलने पर अपना परिचय किस प्रकार दिया ?
अ) अपना नाम विभीषण बताकर
ब) अपने को रावण का भाई बताकर
स) अपने को लंकावासी बताकर
द) अपने को रामभक्त बताकर

८. रामजी को सागर पार करने की लिए उसकी प्रार्थना करने की सलाह किसने दी ?
अ) लक्ष्मण
ब) हनुमान
स) जामवंत
द) विभीषण

९. रामजी ने अयोध्या पहुँचकर पुष्पक विमान को किनके पास भेजा ?
अ) विभीषण
ब) कुबेर
स) इन्द्र
द) ब्रह्मा

१०. 'जातुधान' शब्द का क्या अर्थ है ?
अ) जाति का धनी
ब) एक किस्म के चावल
स) बनिया
द) राक्षस

इन प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर दीजिये. प्रश्नों के सही उत्तर गर्भनाल के अगले अंक में प्रकाशित होंगे. प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

मई २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं : १. ब २. अ ३. स ४. अ ५. स ६. अ ७. स ८. द ९. स १०. अ.

सही उत्तर भेजने वाले पहले पाँच नाम इस प्रकार है : १. निखिल मेहता, ह्यूस्टन, यूसए, २. कविता रावत, भोपाल, ३. अशोक कुमार, मिशिगन, यूसए, ४. विनय गुप्ता, इबरी, ओमान, ५. गोपाल अग्रवाल, ह्यूस्टन, यूसए.

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : परमात्मा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्

गीता ४-७

जब-जब भी धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ.

जिस शक्ति ने यह संसार बनाया है वह इसे पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों के भरोसे छोड़कर अलग नहीं बैठ गई. मनुष्य बहुत ही अपूर्ण प्राणी है और उसके लिए यह पूरी तरह संभव है कि वह समाज के जीवन को इतनी बुरी तरह विकृत कर दे कि फिर उसे सुधारना असंभव हो जाए. लेकिन सौभाग्य से ऐसा होता नहीं है. संसार का इतिहास बताता है कि जब भी कोई समाज अपने पतन की एक बहुत नीची दशा पर पहुँच जाता है तो उसीमें किसी ऐसे व्यक्ति या शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो उसे सही रास्ते पर ले आती है. श्रीकृष्ण का यह कथन हमें जीवन के सबसे अंधकारपूर्ण क्षणों में भी आशावान रहने का संदेश देता है. जब हताशा अपनी चरम सीमा पर हो तब भी हम आशा कर सकते हैं कि उद्धार की शक्ति शीघ्र ही प्रकट होकर स्थिति को सम्हाल लेगी और हम और हमारा समाज एक बार फिर विकास के सही मार्ग पर चल निकलेंगे.

भारत : हे अर्जुन, **यदा यदा हि :** जब-जब भी, **धर्मस्य ग्लानिः भवति :** धर्म का ह्रास होता है, **अधर्मस्य अभ्युत्थानं :** और अधर्म की वृद्धि होती है, **तदा :** तब-तब, **अहम् आत्मानं सृजामि :** मैं अपने आप को प्रकट करता हूँ.

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्

गीता ९-२९

मैं सभी प्राणियों में समान हूँ, मेरे लिए न तो कोई द्वेषयोग्य है और न कोई प्रिय. जो भक्ति के साथ मेरी उपासना करते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ.

क्योंकि सभी प्राणी परमात्मा के ही बनाए हुए हैं, इसलिए सभी उसके लिए समान हैं. परमात्मा ही उन सभी में काम कर रहा है इसलिए ऐसा नहीं हो सकता कि कुछ को तो परमात्मा पुरस्कार दे और कुछ को दण्ड. अवश्य ही विभिन्न व्यक्तियों के आध्यात्मिक विकास के स्तर भिन्न-भिन्न होते हैं. जो व्यक्ति अपने आपको जितना अधिक परमात्मा के प्रति समर्पित करता जाता है उतना ही वह उसके निकट पहुँचता जाता है. परमात्मा से डरने की बजाय उसके पास जाने और उसे समझने की आवश्यकता है. जो व्यक्ति अपने आप को पूरी तरह परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है, वही उसे उसके सच्चे स्वरूप में जान सकता है. ऐसा व्यक्ति सदा परमात्मा के साहचर्य में जीवन बिताता है.

अहं सर्वभूतेषु समः : मैं सभी प्राणियों में समान हूँ. **न मे द्वेष्यः अस्ति :** न मेरे लिए कोई द्वेषयोग्य है, **न प्रियः :** न कोई प्रिय. **ये तु :** जो भी, **मां भक्त्या भजन्ति :** भक्ति के साथ मेरी उपासना करते हैं, **ते मयि :** वे मुझ में हैं, **तेषु च अहम् अपि :** और मैं भी उनमें हूँ.

विषय : परमात्मा की भक्ति

अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः

गीता ९-३०

महादुराचारी व्यक्ति भी यदि अनन्य भाव से मेरी उपासना करे तो उसे साधु ही मानना चाहिए क्योंकि उसने अच्छा निश्चय कर लिया है.

भारतीय विचारधारा में किसी भी व्यक्ति को सदा के लिए दण्डित किया गया नहीं माना जाता. पापी से पापी मनुष्य के लिए भी यहाँ स्वयं परमात्मा के द्वारा उद्धार का आश्वासन है. पापी लोगों के पाप करते समय भी परमात्मा उनके अंदर विद्यमान रहता है. उन्हें अपने अंदर विद्यमान परमात्मा के प्रति सचेत होने की आवश्यकता है. हमें अपने जीवन में ही ऐसे अनेक व्यक्ति मिले होंगे जो पाप का मार्ग छोड़कर पुण्य के मार्ग पर आ गए हैं. सबसे महत्त्वपूर्ण बात अपने जीवन को बदलने का दृढ़ निश्चय है. यदि एक बार मनुष्य ऐसा निर्णय कर ले तो आगे स्वयं परमात्मा ही सही मार्ग पर चलने के लिए उसका मार्गदर्शन करता रहेगा.

अपि चेत् सुदुराचारः : यदि बहुत दुराचारी व्यक्ति भी, **मां :** मुझे, **अनन्यभाक् :** अनन्य भाववाला होकर, **भजते :** उपासना करता है, **स साधुः एव मंतव्यः :** उसे साधु ही मानना चाहिए क्योंकि, **सः हि सम्यक् व्यवसितः :** वह अवश्य ही अच्छे निश्चयवाला है.

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शांतिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति

गीता ९-३१

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा शांत अवस्था में रहता है. हे अर्जुन, तू यह निश्चय जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता.

मनुष्य जब भी कोई बुरा काम करता है, उसके मन की शांति अवश्य ही भंग हो जाती है. वह एक के बाद एक गलत काम करता जाता है और सदा अशांति और तनाव का जीवन बिताता है. अधिकतर गलत काम या तो अज्ञान के कारण होते हैं या फिर अहंकार के दबाव में किये जाते हैं. पर जब मनुष्य आध्यात्मिक जीवन बिताने का निश्चय कर लेता है तो उसका अहंकार स्वतः शांत हो जाता है और उसके सभी काम एक आंतरिक प्रकाश के मार्गदर्शन में होने लगते हैं. ऐसा जीवन बिताते हुए वह सदा ही शांत अवस्था में रहता है. यहाँ परमात्मा स्वयं आश्वासन दे रहा है कि जो भी उसकी भक्ति करेगा उसका कभी नाश नहीं होगा. होना भी ऐसा ही चाहिए. जब परमात्मा स्वयं किसी की देखभाल कर रहा हो तो उसका सभी दुष्प्रभावों से बचाव स्वाभाविक है.

वह व्यक्ति, **क्षिप्रं :** शीघ्र ही, **धर्मात्मा भवति :** धर्मात्मा हो जाता है, **शश्वत् :** सदा, **शांतिं निगच्छति :** शांत अवस्था में रहता है, कौन्तेय- हे अर्जुन, तू , **प्रतिजानीहि :** निश्चय जान, **मे भक्तः :** मेरा भक्त, **न प्रणश्यति :** कभी नष्ट नहीं होता.■

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

गुण कुल जाति अधीन

किसी जंगल में शेरों का एक जोड़ा रहता था. कुछ समय बीतने पर शेरनी के दो बच्चे पैदा हुए. अब वह उन बच्चों को छोड़कर कहीं जा तो सकती नहीं थी, सो शेर ही शिकार करके लाता और उसके सामने रख देता. एक दिन उसे कोई शिकार नहीं मिला. वह थका-हारा लौट रहा था कि रास्ते में उसे सियार का एक बच्चा दीख गया. उसने उसे अपने दातों में दबा लिया और अपनी मांद के पास ले आया और शेरनी को सौंप दिया.

शेरनी ने उससे पूछा, 'नाथ, तुमने आज के खाने-पीने का क्या जुगाड़ किया है?'

शेर बोला, 'आज तो मैं सारे दिन भटकता रहा पर इस सियार के बच्चे को छोड़कर कुछ भी हाथ नहीं आया. इसे भी यह सोचकर नहीं मारा कि एक तो बच्चा है, दूसरे है भी अपने मांसाहारी बिरादरी का ही. इसे मारने से पाप लगेगा. कहा भी गया है कि स्त्री, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी या बालक को कभी नहीं मारना चाहिए. यदि वे भरोसा करके आए हैं तब तो प्राण जाने की नौबत आने पर भी उनकी हत्या नहीं करनी चाहिए. सो मुझसे तो मारा नहीं गया, तुम चाहो तो इसे खाकर आज रात का गुजारा कर लो, भोर होते ही कोई न कोई उपाय करूंगा.'

शेरनी बोली, 'स्वामी, जब आपने इसे बच्चा समझकर छोड़ दिया तो फिर मैं अपना पेट भरने के लिए इसकी जान क्यों लेने लगी. कहा गया है कि मनुष्य को जो काम नहीं करना चाहिए उसे प्राण जाने की नौबत आने पर भी नहीं करना चाहिए. और जो कुछ करना चाहिए उसे जान की बाजी लगाकर भी करके ही रहना चाहिए. यही मनुष्य का परम धर्म है. इसे छोड़ शेष सब ढकोसला है.'

शेर तो शेर ही रहा, शेरनी सवा सेर निकली. उसने कहा, 'मेरे दो बच्चे तो पहले से हैं ही, यह मेरा तीसरा बच्चा रहेगा.

अब क्या था. शेरनी उस सियार के बच्चे को भी अपना दूध पिलाकर पालने लगी. अब शेरनी के तीनों बेटे जहां जाते साथ जाते, साथ खेलते और साथ ही रहते? उनमें किसी को यह गुमान तक नहीं था कि उनकी जाति अलग-अलग है.

एक बार जब वे वन में घूम रहे थे तो उनके सामने एक हाथी पड़ गया. उसे देखकर शेर के बच्चों के चेहरे तमतमा उठे और वे उसकी ओर दौड़ पड़े, पर सियार के बच्चे ने कहा, 'अरे यह क्या करते हो? वह तुम्हारा खानदानी दुश्मन है. उसके सामने नहीं जाना चाहिए. यह कहते हुए वह घर की ओर भाग निकला. उसे भागते देखकर शेर के छौनों का भी जोश ठंडा पड़ गया.'

कुछ गलत तो नहीं है कि युद्ध के समय एक भी उत्साही और धीर योद्धा हो तो पूरी सेना में जान आ जाती है और वह मोर्चे पर डटी रहती है और एक भी कायर हुआ तो उसके भागने से पूरी मोर्चा छोड़ कर भागने लगती है.

राजा लोग यूं ही नहीं चाहते हैं कि उनकी सेना में अधिक से अधिक महाबली योद्धा हों. यदि थोड़े से भी शूर, वीर, उत्साही योद्धा हों तो उनकी देखा-देखी कायर भी मोर्चे पर डटे रहते हैं.

घर लौटने के बाद उन दोनों शावकों ने अपने बड़े भाई के कारनामे का बखान किया कि यह तो हाथी को देखते ही हमें छोड़ कर नौ दो ग्यारह हो गये.

उनकी बात सुनकर सियार के बच्चे का पारा चढ़ गया. उसके होंठ फड़फड़ाने लगे, आंखें लाल हो आईं और भौंहे तन गईं. वह कहने, लगा, 'जरा इनकी अक्ल तो देखो. एक तो मैंने इनको नेक सलाह दी और ये हैं कि मुझे ही भला-बुरा सुना रहे हैं. बेवकूफों को अक्ल दो तो वे उल्टे खाने को दौड़ते हैं. जमाना तो नेकी का रहा ही नहीं.'

उसे गरम होते देखकर शेरनी ने कुछ देर तो टाला पर जब उससे न रहा गया तो उसे एक किनारे ले जाकर समझती हुई बोली, 'बेटे, तुम्हें इन्हें इस तरह नहीं डांटना चाहिए.

> आज मैं तुझे वह बात बता दूं
> जिसे आज तक नहीं बताया.
> तू मेरा कोखजाया पुत्र नहीं है.
> तू सियारिन से पैदा हुआ है.
> यह मैं थी जिसने तुझे अपना
> दूध पिलाकर पाला और कभी तुझे
> यह खटने भी नहीं दिया कि तू
> किसी और जाति का है.

आखिर ये हैं तो तुम्हारे छोटे भाई ही.'

सियार का पारा अब भी गरम था. उसने कहा, 'छोटे भाई क्या बड़े भाइयों की हंसी उड़ाने के लिए होते हैं? ये अपने को समझते क्या हैं? क्या मैं इनसे बहादुरी में, सुंदरता में, विद्या में या कौशल में किसी तरह कम हूं जो ये मेरी हंसी उड़ा रहे हैं? मैं इनकी जान लेकर ही रहूंगा.'

बेचारी शेरनी की तो आफत आ गई. अब वह कैसे समझाती कि बेटे यह गलती भूलकर भी न करना नहीं तो उनका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे. उसने मुस्कराते हुए कहा, 'बेटा, तुम जो कुछ कहते हो, सोलह आने सच है. तुम शूर हो, पंडित हो, देखने-सुनने में भी सुंदर हो, यदि कमी है तो बस एक कि तुम्हारा जन्म जिस कुल में हुआ है उसमें हाथियों का शिकार नहीं किया जाता.'

तो आज मैं तुझे वह बात बता दूं जिसे आज तक नहीं बताया. तू मेरा कोखजाया पुत्र नहीं है. तू सियारिन से पैदा हुआ है. यह मैं थी जिसने तुझे अपना दूध पिलाकर पाला और कभी तुझे यह खटने भी नहीं दिया कि तू किसी और जाति का है. अब तेरी भलाई इसी में है कि जब तक मेरे बच्चों को यह पता चले कि तू शेरनी का बच्चा नहीं सियारिन का बच्चा है, तू अपनी जान बचाकर यहां से खिसक ले और अपनी जात-बिरादरी में मिल जा. यदि ऐसा नहीं किया तो तुझे अपने प्राण गंवाने पड़ जाएंगे.

यह सुनना था कि वह डर से कांपने लगा. वहां से वह चुपचुपा खिसका और जाकर अपनी बिरादरी में मिल गया.

पूरी कहानी सुनाने के बाद राजा ने कुम्हार से कहा, 'देखो, जब तक राजपूतों को पता नहीं चलता कि तुम कुम्हार हो तभी तक तुम्हारी जान की खैर है. तुम चुपचुपा यहां से भाग लो नहीं तो तुम्हारी बेइज्जती तो होगी ही, तुम्हारी जान भी चली जाए तो कोई आश्चर्य नहीं.' यह सुनना था कि वह कुम्हार सिर पर पांव रखकर भागा.

इसीलिए मैं कह रहा था कि जो यह नहीं सोचता कि उसका अपना लाभ किस बात में है और इस गरूर में रहता है कि हो कुछ भी, वह बोलेगा सच ही, वह कुम्हार की तरह अपना बनता काम भी बिगाड़ लेता है.

अब अपनी बात पूरी करके बंदर ने घड़ियाल को कोसते हुए कहा, 'अरे मूर्ख, तुझे धेले की भी अक्ल नहीं है. तू एक स्त्री के कहने से अपने मित्र के साथ विश्वासघात करना चाहता था. धिक्कार है तुझे और तेरी अक्ल को. मनुष्य को क्या कभी औरतों का विश्वास करना चाहिए? जिसके लिए मैंने घर-बार छोड़ा, अपनी आधी उम्र भी गंवा दी, वही जब मुझे रुखाई से इस तरह छोड़ रही है तो औरत का विश्वास कौन करेगा?'

घड़ियाल की समझ में आता भी तो क्या आता. उसने कहा, 'बात मेरे पल्ले तो पड़ी नहीं.'

बंदर ने कहा, 'सुनो, बतलाता हूं.' ■

गणेश जी 'बागी'

४ मई १९७६ को बलिया में जन्म. असैनिक अभियंत्रण में डिप्लोमा के उपरान्त प्रतिष्ठित अभियंताओं के संस्थान से 'एएमआईइ' की डिग्री प्राप्त की. साहित्य में रुचि. प्रतिष्ठित ई-पत्रिका 'ओपन बुक्स ऑनलाइन डाटकाम' की स्थापना. सम्प्रति - पथ निर्माण विभाग, बिहार सरकार, पटना में असैनिक अभियंता के पद पर कार्यरत. संपर्क : द्वारा कौशल्या शर्मा, दक्षिणी शिवपुरी, निकट राजधानी गैस गोदाम, पटना (बिहार).

ईमेल - ganesh3jee@gmail.com

लघुकथा

कवच

पूरे मोहल्ले में यह चर्चा थी कि गुड़िया को एड्स की बीमारी है. दरअसल उसका पति एक सरकारी मुलाज़िम था जो कि सिर्फ २५ वर्ष की आयु में ही अचानक किसी रहस्यमयी बीमारी का शिकार हो कर दुनिया छोड़ गया था. एड्स पर काम कर रही एक स्वयंसेवी संस्था के कार्यकर्ता बहुत समझा-बुझा कर गुडिया को एड्स की जाँच करवाने अपने साथ ले गए थे. गुड़िया को जो सरकारी पेंशन मिलती थी उसी से वह किसी तरह अपना जीवन यापन कर रही थी.

जांच करने वाले डॉक्टर ने बड़ी हैरानी से पूछा कि रिपोर्ट में तो तुम्हें कोई बीमारी नहीं है, तुम तो बिलकुल स्वस्थ हो, फिर यह एड्स की अफवाह क्यों? तुम लोगों को मुँह तोड़ जवाब क्यों नहीं देती?

हाथ जोड़कर गुड़िया बोली - 'डॉ. साहिब, आपसे विनती है. यह बात किसी से भी मत कहिएगा. एक जवान बेवा अपनी इज्जत खूंखार भेडियों से अभी तक इसी अफवाह के सहारे ही बचाती रही है, भगवान् के लिए मेरा यह कवच मुझ से मत छीनिए...!'

हाथी के दांत

बड़े बाबू आज अपेक्षाकृत कुछ जल्द ही कार्यालय आ गए और सभी सहकर्मियों को रामदीन दफ्तरी के असामयिक निधन की खबर सुना रहे थे. थोड़ी ही देर में सभी सहकर्मियों के साथ साहब के कक्ष में जाकर बड़े बाबू इस दु:खद खबर की जानकारी देते हैं और शोकसभा आयोजित कर कार्यालय आज के लिए बंद करने की घोषणा हो जाती है. सभी कार्यालय कर्मी इस असामयिक दु:ख से व्यथित होकर अपने-अपने घर चल पड़ते हैं.

बड़े बाबू दफ्तर से निकलते ही मोबाइल लगाकर पत्नी से कहते है- 'सुनो जी तैयार रहना मैं आ रहा हूँ, आज सिनेमा देखने चलना है.'

■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

पांचवां दिन

सुबह होने पर दोनों सेनाएं फिर युद्ध के लिये सज्जित हो गईं. भीष्म ने आज और भी अधिक अच्छी तरह अपनी सेना की व्यूह-रचना की. उधर पांडव-सेना की भी व्यूह-रचना युधिष्ठिर ने बड़ी सतर्कता से की. सदा की भांति भीमसेन के आगे खड़ा हो गया. शिखंडी, धृष्टद्युम्न और सात्यकि उनके पीछे सेना की रक्षा करते हुए खड़े रहे और सब पांडव वीर श्रेणीबद्ध होकर उनके पीछे. सबसे पिछली कतार में युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव खड़े थे.

शंख-ध्वनि के साथ लड़ाई शुरू हो गई. भीष्म ने धनुष तानकर बाणों की झड़ी लगा दी. और शीघ्र ही पांडव-सेना की नाक में दम कर दिया. सेना में हाहाकार मच गया. यह देख धनंजय ने भी भीष्म पर कई बाणों से हमला किया.

आज भी अपनी सेना को भयभीत होते देखकर दुर्योधन ने आचार्य द्रोण को बुरा-भला कहा. द्रोण इससे क्रोध में आ गये और बोले- 'तुम पांडवों के पराक्रम से परिचित हो तो नहीं और व्यर्थ में यह बकझक किया करते हो. मैं अपनी ओर से युद्ध करने में कोई कसर नहीं रखता, इतना तुम निश्चित जानो.' और यह कहकर द्रोणाचार्य पांडवों की सेना पर टूट पड़े. यह देख सात्यकि ने उसका पूरी ताकत से जवाब दिया. दोनों में भयानक युद्ध छिड़ गया. परंतु आचार्य द्रोण के आगे भला सात्यकि कब तक टिकता? सात्यकि की बुरी गत होते देखकर भीमसेन उसकी सहायता को दौड़ा और अचार्य पर बाणों की बौछार करने लगा.

इस पर युद्ध और भी जोर पकड़ गया. द्रोण, भीष्म और शल्य तीनों कौरव-वीर भीमसेन के मुकाबले में आ डटे. यह देखकर शिखंडी ने भीष्म और द्रोण दोनों पर तीखे बाणों की झड़ी लगा दी. शिखंडी के मैदान में आते ही भीष्म रंग-भूमि छोड़कर चले गये. भीष्म का कहना था कि शिखंडी चूंकि जन्म से पुरुष नहीं, स्त्री है, इसलिये उसके साथ लड़ना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है.

जब भीष्म मैदान छोड़कर हट गये तो द्रोणाचार्य ने शिखंडी पर हमला कर दिया. महारथी होते हुए भी द्रोण के आगे शिखंडी ज्यादा देर न टिक सका. विवश होकर द्रोण के आगे से उसे हट जाना पड़ा.

दोपहर तक भीषण संकुल-युद्ध होता रहा. दोनों तरफ के सैनिक आपस में गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे. दोनों तरफ से असंख्य वीर इस युद्ध में बलि चढ़ गये.

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी. सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोजते हुए जाकर उनसे भिड़ गया. किंतु भूरिश्रवा भी साधारण वीर न था, बड़ा पराक्रमी था. सात्यकि की सेना पर जोरों से हमला करके सबको खदेड़ दिया. अकेला सात्यकि अंत तक डटा रहा. यह हाल देखकर सात्यकि के दसों पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पड़े.

दसों वीर युवकों के हमले का अकेले भूरिश्रवा ने बड़ी वीरता से मुकाबला किया. यद्यपि सात्यकि के दसों लड़कों ने उसे घेरकर बाणों की बौछार कर दी तो भी भूरिश्रवा ने अद्‌भुत चतुरता का परिचय दिया. उन सबके धनुष उसने काट डाले और दसों को एक साथ ही यमपुरी पहुंचा दिया. दसों पराक्रमी वीर जमीन पर ऐसे गिरे जैसे वज्र गिरने पर पेड़. अपने सारे पुत्रों को यों युद्धभूमि में मृत पड़े देखकर सात्यकि मारे शोक और क्रोध के आपे से बाहर हो गये. तब दोनों ढाल-तलवार लेकर भूमि पर लड़ने लगे. इतने में भीम अपना रथ दौड़ाता हुआ आया और सात्यकि के आगे आ खड़ा हुआ और उसे जबरदस्ती अपने रथ पर बिठाकर युद्धिभूमि से बाहर ले गया. भूरिश्रवा तलवार का धनी था. उसके आगे किसी का भी टिकना मुश्किल था. भीमसेन यह बात भली-भाँति जानता था और इसी कारण उसने सात्यकि को भूरिश्रवा से लड़ने से रोक लिया.

उस दिन संध्या होते-होते अर्जुन ने हजारों कौरव-सैनिकों का जीवन समाप्त कर दिया. जितने वीर अर्जुन के विरुद्ध लड़ने के लिये दुर्योधन ने भेजे, वे सब ऐसे बेवस होकर मरे, जैसे आग में कीड़े. यह देखकर पांडव-सेना के वीरों ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और जोर का जय-जयकार कर उठे. उधर सूरज डूबा और भीष्म ने युद्ध बंद करने की आज्ञा दी. दोनों ओर के थके-थकाये सैनिक अपनी-अपनी छावनी की ओर चले गये. ■

"दसों वीर युवकों के हमले का अकेले भूरिश्रवा ने बड़ी वीरता से मुकाबला किया. यद्यपि सात्यकि के दसों लड़कों ने उसे घेरकर बाणों की बौछार कर दी तो भी भूरिश्रवा ने अद्‌भुत चतुरता का परिचय दिया."

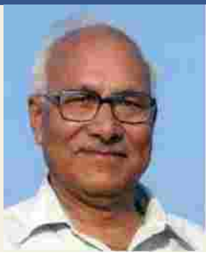

गोविन्द प्रसाद बहुगुणा

१९४५ में रतूड़ीसेरा, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड में जन्म. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., राजकीय इण्टर कालेज में अध्यापन. गांधी स्मारक निधि और गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली से जुड़े रहे. उत्तराखण्ड सरकार में उपश्रम आयुक्त के पद से सेवानिवृति के बाद सरकार में सलाहकार के पद पर कार्यरत. साहित्य में गहरी रुचि. नामी पत्रिकाओं में अनुवाद और आलेख प्रकाशित एवं आकाशवाणी में वार्ता लेख प्रसारित. लीलाधर जगूड़ी की ४० कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद. सम्प्रति- प्रवास पर बंगलुरु में.

सम्पर्क : gpbahuguna84@gmail.com

अनुवाद

मैं फिर भी उठ खड़ी हूँ

माया ऐंजेलो

४ अप्रेल, १९२८ को अमेरिका के सेंट लुईस मिस्सौरी शहर में पैदा हुई. अफ्रीकी मूल की यह विख्यात अमेरिकन महिला लेखिका पत्रकार, कवि, कहानीकार, गायिका, अभिनेत्री, फिल्मकार, महिला समर्थक और सक्रिय आन्दोलनकारी के रूप में चर्चित और लोकप्रिय रचनाकार हैं. उनकी प्रसिद्ध कृति I Know why the caged bird sings (१९६९) ने उनको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाई, जिसमें उनके १७ वर्षों के किशोर अवस्था के संस्मरण अंकित हैं. उनकी प्रकाशित कृतियों में उनकी ६ आत्मकथाओं की श्रृंखला, कविता संकलन, ५ निबन्ध ग्रन्थ, नाटक, गीत आदि अनेक रचनायें शामिल हैं. वह कई टेलीविजन शो और फिल्मों की निर्माता भी हैं. अमेरिका में जन्मे अश्वेत नागरिकों, विशेष रूप से नीग्रो महिलाओं को समान नागरिक अधिकार दिलाने के लिये वह लम्बे समय तक संघर्षरत रही. सिविल राइट्स मूवमेंट में उन्होंने मार्टिन लूथर किंग के साथ सक्रिय भागीदारी की. उन्हें दर्जनों पुरस्कार और सम्मानों से नवाजा जा चुका है जिसमें डाक्ट्रेट की लगभग ३० मानद उपाधियां भी सम्मिलित हैं. वह विन्सट्न सालेम में वेकफारेस्ट यूनिवर्सिटी में अमेरिकन स्टडीज की आजीवन रेनाल्ड प्रोफेसर के रूप में कार्य कर रही हैं. अमेरिका में राबर्ट फ्रास्ट के बाद वह दूसरी अमेरिकन कवि हैं जिसको राष्ट्रपति के उद्घाटन समारोह में कविता पाठ करने के लिये आमंत्रित किया गया, इसीसे अंदाज लग जाता है कि वह किस कदर अमेरिकन्स के दिलो दिमाग में छाई हुई हैं.

मैं फिर भी उठ खड़ी हूँ इतिहास के पन्नों में
तुम मुझे ठुकराकर नकार सकते हो
अपने कटु और तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत झूठ के अंदाज में
तुम मुझे मिट्टी में बिल्कुल कुचल कर रख सकते हो
लेकिन मैं फिर भी धूल की तरह उठ खड़ी हूँगी
क्या मेरा रूखापन तुम्हें विचलित करता है?
नहीं तो फिर यह उदासी तुम्हें क्यों घेर लेती है?
क्योंकि मैं ऐसे चलती हूँ जैसे मेरे पास तेल के कुएं हो
जिनको मैं सीधे अपने शयनकक्ष के
बाहर से ही उलीच सकती हूं?

या मैं उन चांद और सूरज की तरह हूँ
जिनमें ज्वार भाटे निश्चित आते ही हैं
जैसे उम्मीदों की लहरें ऊपर उठ रही हों
उसी तरह मैं फिर उठ खड़ी हूँ

क्या तुम मुझे बिल्कुल टूटी चुकी देखना चाहते हो?
सिर झुकाये, आँखें नीचे किये हुए
टपकते हुए आंसुओं की तरह ढलते कंधे लिय हुए
अपनी दिल दहलाने वाली चीख पुकार से बेहाल

क्या तुम्हें मेरा दंभी स्वभाव चुभता है?
क्या तुम इसे अपने दिल पर ठेस महसूस करते हो
क्योंकि मैं ऐसे खुलकर हँस लेती हूँ
जैसे मेरे पास कई सोने की खानें हों
जो मेरे घर के पिछवाड़े खोदी जा सकती हैं

तुम मुझ पर अपने शब्दबाण से मार सकते हो
मुझे अपनी नजरों से चीरकर रख सकते हो
अपनी नफरत से मुझे मार सकते हो
लेकिन हवा की तरह मैं फिर ऊपर उठ सकती हूँ

क्या तुम्हें मेरी कामुकता खलती है?
क्या तुम्हारे लिये यह एक झटका नहीं है?
क्योंकि मैं ऐसे स्वच्छन्द नाच लेती हूँ
मानों मेरी जांघों के बीच हीरे की खाने हों
इतिहास की शर्मनाक झोपड-पट्टी से बाहर
निकलकर मैं उठ खड़ी हूँ
उस अतीत के गर्त से उठ खड़ी हूँ
जो दुख दर्द से भरा पड़ा था
मैं उठ खड़ी हूँ
विस्तीर्ण उफनते-उछलते काले सागर की तरह
अपने अन्दर ज्वार और तूफान लिये हुए
अपने पीछे आतंक और भय की काली रातें छोड़कर
पौ फटने के लिये मैं फिर उदय हो रही हूँ
आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट
अपने साथ वह सब सौगात लिये हुए
जो मेरे पुरखों ने मुझे दी है
मैं उन दास जनों का स्वप्न और आशा हूँ
मैं अब उठ खड़ी हूँ, उठ खड़ी हूँ, उठ खड़ी हूँ.■

मूल अंग्रेजी गूगल से साभार

सुकान्त भट्टाचार्य
(१५ अगस्त, १९२६/१३ मई, १९४५)

बांग्ला साहित्य के प्रतिष्ठित कवियों में अग्रणी हैं. क्षणजन्मा बांग्ला का एक शब्द है, शब्दकोष में इसके कई अर्थ मिलते हैं; दुर्लभ शुभ मुहूर्त में जन्म लेनेवाला, भाग्यवान, दुर्लभ गुणों से युक्त, अत्यन्त प्रतिभावान. सुकान्त के लिए भाग्यवान तो कदाचित ही उपयुक्त हो, पर अन्य अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह नहीं किया जा सकता है. उन्हें किशोर नजरूल एवम् किशोर वाहिनी कवि कहा जाता था. उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र दैनिक स्वाधीनता का सम्पादन १९४६ में इसके प्रारंभ होने से ही किया. बीस साल की ही उम्र में यक्ष्मा से यादवपुर के टी.बी. अस्पताल में उनका देहान्त हो गया.

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद गंगानन्द झा

पासपोर्ट

जिस शिशु ने आज जन्म लिया है
उसके मुँह से मुझे खबर मिली है
उसे एक परवाना मिला है
नई दुनिया के दरवाजे पर इसीलिए वह
अधिकार की घोषणा कर रहा है

जन्म लेने के साथ ही जोर-जोर से चीत्कार करते हुए
दुबली-सी असहाय देह, फिर भी उसके मुट्ठी बँधे हाथ
ऊपर उठे हुए हैं, चमक रहे हैं
किसी दुर्बोध्य प्रतिज्ञा से
वह भाषा कोई नहीं समझता
कोई हँसता है, कोई मृदु तिरस्कार करता है

लेकिन मैंने मन ही मन वह भाषा समझ लिया है
मिली है चिट्ठी आसन्न युग की
भूमिष्ठ शिशु का परिचय-पत्र पढ़ता हूँ
अस्पष्ट कुहासा भरी आँखों में

आया है नया शिशु, उसके लिए जगह छोड़ देनी होगी
जीर्ण पृथ्वी पर व्यर्थ, मृत और ध्वंस-स्तूप पीठ में
चला जाना पड़ेगा हमलोगों को
चला जाऊँगा - फिर भी आज जब तक देह में जान है
जी जान से पृथ्वी का जंजाल हटाऊँगा
नवजातक को मेरी प्रतिश्रुति है

अन्त में सारा काम पूरा कर
अपनी देह के रक्त से शिशु को
आशीर्वाद दे जाऊँगा
उसके बाद हो जाऊँगा इतिहास.

■

अट्ठारह साल की उम्र

अट्ठारह साल की उम्र असह्य होती है
सर उठाने का खतरा मोल लेने की गुस्ताखी करती है
अट्ठारह साल की उम्र में ही रोज-रोज
विराट दुस्साहस झाँकते रहते हैं

यह उम्र रक्तदान का पुण्य जानती है
स्टीमर की तरह भाप के वेग से चलती है
प्राण देने-लेने की झोली खाली नहीं रहती
आत्मा को शपथ का कोलाहल सौंपा करती है

अट्ठारह साल की उम्र भयंकर होती है
ताजे प्राणों में असह्य यंत्रणा हुआ करती है
इस उम्र में प्राण तीव्र और प्रखर रहते हैं
इस उम्र में कानों में कितनी ही मंत्रणाएँ आती रहती हैं

अट्ठारह साल की उम्र उपद्रवी होती है
रास्तों और बीहड़ों में तूफान उठाया करती है
विपत्ति में पतवार थामे रहना कठिन हो जाता है
हजारों प्राण क्षत-विक्षत हुआ करते हैं

फिर भी अट्ठारह की जय-ध्वनि सुनी है मैंने
यह उम्र विपत्ति और तूफान में जीवित रहती है
विपत्ति के सामने यह उम्र अग्रणी रहती है
यह उम्र तब भी नया कुछ तो करती है

जान लो यह उम्र भीरू, कापुरुष नहीं होती
राह चलते यह उम्र नहीं रुकती
इस उम्र में किसी तरह का सन्देह नहीं रहा करता
इस देश के कलेजे में अट्ठारह समा जाए.

■

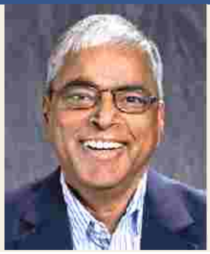

डॉ. सुरेश राय

जन्म महडौर, जिला गाजीपुर. शिक्षा - बनारस हिन्दू विवि, रूड़की विवि तथा कुरूक्षेत्र विवि से इलेक्ट्रॅनिक्स इंजीनियरिंग में क्रमशः स्नातक, स्नातकोत्तर एवं आचार्य की उपाधि. अमेरिका में १९८६ से कार्यरत. कविता और कहानी लेखन में रुचि. प्रकाशित कविता संग्रह- 'अनुभूति के दो स्वर' में एक स्वर स्व. जयन्ती राय (पत्नी) तथा दूसरा स्वर सुरेश का. अमेरिका से प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'विश्व-विवेक' का कई वर्षों तक सह-सम्पादन भी किया.

सम्प्रति : लुजियाना स्टेट विवि., बैटनरूज के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में प्रोफेसर. ईमेल : suresh@ece.lsu.edu

कविता

दर्पण

जब मैं छोटा था
तब भारत के एक छोटे शहर में रहता था
दो कमरों वाला अपना घर
माँ, बाबूजी, बड़ी दीदी और मेरे अलावे
बिना बताये कभी भी आ जाने वाले
रिश्तेदारों का आश्रय-स्थल था
उस घर में चेहरा देखने के लिए
एक छोटा हाथवाला आईना था
जिसकी सहायता से बाबू जी अपना देवानन्दी-बाल
और बड़ी दीदी अपनी साधना-कट जुल्फें बनाते
अपने-अपने सपने सँवारा करते थे

माँ को कहीं जाना नहीं होता था
अतः अपराह्न तीन बजे फुर्सत के मिले आध घंटे में
वह बाबू जी तथा मेरे कपड़े धोने के बाद नहाती और
अँगुलियों से छू-छूकर कंघी से अपना बाल बना लेती

बचा मैं -
जिसके अति छोटे बालों के लिए बाबू जी प्रतिबद्ध थे
उनका कहना था -
'बड़े बाल बच्चों के मानसिक विकास में बाधक होते हैं।'
बाबू जी की कही अन्य बातों की तरह
उनके इस कथन पर अविश्वास जताने का
मुझमें कभी साहस नहीं हुआ

अब मैं बड़ा हो गया हूँ
अमेरिका के एक बड़े शहर में
चार कमरों के घर में रहता हूँ
जहाँ किचेन अलग है
बेटी तथा बेटे के लिये अपना कमरा अलग है और
घर में तीन बाथरूम की वजह से
उनका अपना दर्पण भी अलग है
पत्नी और मैं - एक कमरे में साथ-साथ रहते हैं
पर हमारा दर्पण बँटा हुआ है
चौथा कमरा - अब अतिथि के लिये है
कभी सोचा था माँ और बाबू जी का होगा

अगर वह अमेरिका आते
लेकिन, माँ और बाबू जी
हमारे पास कभी नहीं आये
अपनी जड़ों से दूर जाने की प्रवृत्ति तथा
पत्नी में घरवालों के प्रति अमैत्री-भाव देख
उन्हें बुलाने का उत्साह नहीं हुआ
बड़ी दीदी - अपनी मरज़ी से शादी कर
हमारे परिवार से पहले ही अलग हो गयी थीं

मेरा अपना दर्पण खूबसूरत और आदमकद है
इसे बाथरूम की एक सम्पूर्ण दीवार समर्पित है
इसके सामने क्षण भर खड़े होकर
सिर से पाँव तक किसी भी रूप में
अपने आप को देख सकता हूँ
तथा आते-जाते प्रायः देखता भी रहता हूँ
अब बच्चा नहीं रहा -
जिसे बाबू जी की हिदायतों के कारण
खेल-कूद, साथी-मित्र एवं आईना से भी दूर रहना पड़े
पर, दर्पण में देखते हुये आज स्वयं को निर्वस्त्र पाता हूँ
एक ऐसा व्यक्ति जिसका तन मँहगे कपड़ों में ढँका है
लेकिन उसका मन नंगा है
और जिसे दिखलाने में दर्पण
तनिक संकोच नहीं करता
क्योंकि, वह तो तन-मन की हालत
खोलकर रख देने की कला में माहिर है
हाथवाले आईने से आदमकद दर्पण तक का प्रस्थान
पाने और खोने अथवा सिर्फ खोते रहने की यात्रा रही
इसका लेखा-जोखा समय बताएगा
सब वृतान्त उसी की गठरी में बन्द है.

■

डॉ. संदीप कुमार शुक्ल

१ जुलाई १९७३ को सीतापुर, उत्तरप्रदेश में जन्म. भौतिकी में पी.एच-डी. की उपाधि प्राप्त की. एम.एन.एन.आई.टी. इलाहाबाद एवं बी.एस.एन.वी. पी.जी. कॉलेज लखनऊ में अध्यापन. अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में अनेक शोध पत्र प्रकाशित. हिन्दी साहित्य में रुचि. कविताएँ एवं आलेख लिखते हैं. सम्प्रति - आई.आई.टी. कानपुर में पोस्ट डॉक्टरल फैलो हैं.

सम्पर्क : ७०५, सिविल लाइंस चर्च रोड, सीतापुर (उ.प्र.) ईमेल - sandeepkphysics@gmail.com

उन्मीलित नेत्रों से

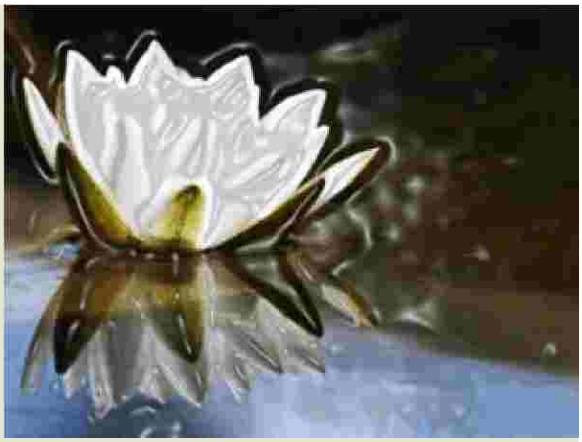

वो अपनी मेज पर
मन की बहती रेत पर
तारों के आँगन में
उन्मीलित नेत्रों से
अनंत के छोर को
दूर एक खिड़की से
टुकुर टुकुर तक रहा था
जिसमें शीशे लगे थे
मोटे और पारदर्शी थे
कुछ धुंधला-धुंधला सा
बहका बहका सा
ऊर्जा का समंदर
नीली-नीली रेखाओं-सा
खिड़की के उस पार
सागर-सा अपार उमड़ रहा था

ये किसकी आकृति है
जो कि इतनी विचित्र है
पर मैं सीमा में बंधा हुआ
खिड़की के पीछे छुपा हुआ
उस पार देखता रहता हूँ
उड़ने की सोचा करता हूँ
पर ये पदार्थ की सीमाएँ
इस तन को कैसे समझाएँ

तू अपने अगणित रूपों के
स्थूल रूप पे मर बैठा
अपने ही तन के एक मन में
कितने मन तू है कर बैठा

वो देख वहां पर
ओंस के बूंदों की
मखमली चादर
नीलम सी पारदर्शी
अनंत सी समदर्शी
जलज की छाया
झिलमिल सी माया
प्रतिबिम्बित सी आभासित है
तेरी असीमता
उस सीमा के पार
नभ सी अपार

वो देख वहां पर
जलधि में भुजंग पर
श्याम-सा वर्णधर
स्वर्ण की किरण सा
शांति के श्रोत सा
आनंद का सागर
उमंग का गागर
करुणा का आगर
तू ही तो है

जरा सुन
उस कोयल की कूक में
पपीहे की पिहू में
अंतस की हूक में
तू ही तो अनुनादित है
तू ही तो अह्लादित है
तू ही तो उल्लासित है
रे मन, अरे ओ पगले तन
तू ही तो है, तू ही तो है.■

नवल किशोर कुमार
बिहार के पहले हिन्दी वेब पोर्टल 'अपना बिहार डाट ओआरजी' के संपादक हैं. इनकी अनेक काव्य रचनायें वागर्थ एवं देश की अन्य प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं. सम्प्रति : नई दिल्ली से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'फ़ारवर्ड प्रेस' में उपसंपादक हैं.
सम्पर्क : nawal.buildindia@gmail.com

कविता

यादें

वर्तमान को कैमरे में कैद कर
उसे यादों की संज्ञा दी जा सकती है
या फ़िर बीते हुए लम्हों को हम
शब्दों की चासनी में लपेट
कभी कविता तो कभी कहानी
या कभी जीवनांश के रूप में लिख सकते हैं।
हम चाहें तो यादों के खजाने को
लाल कपड़े में लपेट
सदियों से चली आ रही
बाप-दादाओं की पुरानी संदूक में
सहेज कर नया ताला जड़ सकते हैं।
यह भी संभव है कि हम
अपनी यादों को
अपने सीने से लगाए
सारा जीवन जीते रहें
बिना कोई उन्हें संज्ञा दिये
और फ़िर एक दिन जमींदोज हो जायें
या फ़िर भस्म हो जायें
उन यादों के साथ।
लेकिन यादों का क्या?
यादें तो तब भी जीवित रहेंगी
मेरे जेहन में न सही
तुम्हारे, उसके या फ़िर सबके जेहन में
जब-जब यादें कुलबुलायेंगीं
उनके जीर्ण-शीर्ण हो चुके अंगों से
गहरा मवाद निकलेगा
और जब उन्हें कोई प्यार से सहलायेगा
तब वे भी मुस्करायेंगी
अपने हाथों से अपने तन पर लगे
रक्त को साफ़ कर
उठकर बैठने की कोशिश करेंगी
थोड़ा और प्यार करने पर
संभव है कि टाइटेनिक की नायिका के जैसे
वर्तमान को फ्लैश-बैक में ले जायेंगी

जहां रोमांच है, रोमांस है
वर्तमान पुलकित हो उठेगा
अतीत की रंगीनियत को जानकर
उसकी भुजायें भी फ़ड़कने लगेंगी
होंठों की प्यास बढ़ जायेगी
और फ़िर जब वर्तमान
यादों को संदूक में बंद करने का जतन करेगा
यादें विद्रोह करेंगी
लेकिन वर्तमान उस पर हंसेगा
और फ़िर एक पल में ही
यादों का दम निकल जायेगा
यादें फ़िर से कैद हो जायेंगी
तस्वीरों, दस्तावेजों और इतिहास के पन्नों में
लेकिन इतना वे भी जानती हैं
जब-जब वर्तमान हताश होगा
अपनी जिंदगी से परेशान होगा
उन्हें खोला जायेगा
और फ़िर प्रक्रिया दुहरायी जायेगी
इसलिये यादों को भी मंजूर है
समय-समय पर कैद होना और आजाद होना
शायद यही यादों की किस्मत में लिखा है।
■

डॉ. मोनिका शर्मा

अर्थशास्त्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातकोत्तर डिग्री. सामाजिक विज्ञापनों से जुड़े विषय पर शोधकार्य किया. प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ-साथ अध्यापन के क्षेत्र से भी जुड़ाव. हिंदी ब्लॉग 'परवाज़ शब्दों के पंख' http://meri-parwaz.blogspot.com लिखती हैं. विगत तीन वर्षों से कनाडा में निवास.

संपर्क - monikasharma.writing@gmail.com

मैं एक पिता हूँ

मेरे हिस्से न आया
गीला बिछौना, रातों का रोना
न ही आई थपकियाँ
न लोरी
न पालने की डोरी
न आंसू बहाना
न तुम्हें गोदी में छुपाना
न साज-संभाल करने वाले हाथ
न ही कोई उनींदी रात

अल-सुबह घर से निकलना
कुछ तिनकों की तलाश में
एक नीड़ सहेजने की आस में
ताकि सांझ ढले जब लौटूं
तो गुड़िया, मुनिया और छोटू
सबके चेहरे पर हो खिलखिलाहट
सुनकर मेरे कदमों की आहट
तब मेरा तन भले ही मैला हो
बस! हाथ में खिलौनों भरा थैला हो
इन पलों में मैं भी
बचपन को जीता हूँ

मुझे तो समझनी है
तुम्हारी हर इच्छा
हर बात
लाकर देनी है तुम्हें
हर सौगात
खिलौने, गुब्बारे और मिठाई
कपड़े, किताबें, रोशनाई
तुम्हारा हर स्वप्न
करूँ पूरा
नहीं तो मैं रहूँगा
अधूरा
बस! इसी सोच के साथ जीता हूँ

मुझे बनना है घर का हिमालय
बलवान, अडिग और अटल
मज़बूत कंधे मौन संबल
तुम्हारा आदर्श, जीवन का मान
तुम्हारी जीत पर गर्वित
और हार पर धैर्यवान

मेरे कम शब्द और
गहरी आवाज़
अनुशासन, अभिव्यक्ति का राज़
वक़्त की धूप में पककर
तुम समझ पाओगे
फिर मेरे मन के करीब आओगे
और जान जाओगे
इतना सब होकर भी मैं
भीतर से रीता हूँ
क्योंकि मैं एक पिता हूँ.■

अवनीश तिवारी
संगणक अभियंता और वाणिज्य प्रबंधन में स्नातकोत्तर. साहित्यिक रुचि से हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में पद्य और गद्य रचनाओं के सृजन में सक्रिय. वर्तमान में शास्त्रीय संगीत का अध्ययन एवं मुंबई में निवासरत है.
सम्पर्क : anish12345@gmail.com

ग़ज़ल

बिन मेरे

जैसे यह रात, चाँद की रोशनी से ख़ूबसूरत है
वैसे जिन्दगी में मेरे तेरे प्यार की ज़रूरत है

हुया करता कईयों से दीदार रोज अपना
जो मन में बसी वो तेरी ही प्यारी सूरत है

बदले दिन, बदले बरस और बदले मौसम
मिलने की तुझसे ना जाने कौन-सी महूरत है

ना आये ख्याल तेरा दीमाग में मेरे
ऐसा हर दिन बेजान, हर रात बदसूरत है

बिन मेरे तेरा अपना वजूद हो सकता है
बिन तेरे 'अवि' एक खामोश मूरत है.
■

आज-कल

आज - कल अक्सर तनहाई होती है
रात तड़प और नींद से जुदाई होती है

चलते लोगों को पुकार रुकाता हूँ
हर शख्स में तेरी परछाई होती है

चाहे शहर तेरा हो या शहर मेरा
मोहब्बत पर रोक और मनाई होती है

दिखे कभी जो मुखड़ा तेरा
हुश्न औ इश्क की सगाई होती है

बिन तेरे किस घर जाऊं अब
हर घर 'अवि' की बुराई होती है.
■

नवीन सी चतुर्वेदी
२७ अक्तूबर १९६८ को मथुरा में जन्म. छन्द, ग़ज़ल, हाइकु, गीत-नवगीत, तुकांत-अतुकांत कविताओं के अलावा गद्य लेखन. आकाशवाणी मथुरा-वृन्दावन और आकाशवाणी मुंबई से कविता पाठ. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. ई-क़िताब 'कुछ अपना कुछ औरों का एहसास' प्रकाशित. ब्लॉग 'ठाले बैठे' का संचालन. सम्प्रति - मुंबई में सिक्यूरिटी एक्विपमेंटस के व्यवसाय में संलग्न.
सम्पर्क : navincchaturvedi@gmail.com

एक

उजालों के बिना दीदार मुमकिन हो न पायेगा
अँधेरे हों तो आईना भी हमको क्या दिखायेगा

हरिक अच्छे-बुरे पहलू को मिल-जुल कर दिखा देंगे
मगर तब, जब कोई इन आईनों के बीच आयेगा

हुनरमंदो तुम अपनी पैरवी ख़ुद क्यों नहीं करते
वगरना कौन है जो आईनों को हक़ दिलायेगा

मुसाफ़िर सैर में मशगूल, नाविक नोट गिनने में
नदी जब सूख जायेगी, हमें तब होश आयेगा

अगर लहरों पे रहना है, तो आँखें भी खुली रक्खो
ज़रा-सी चूक होगी तो समन्दर लील जायेगा.

■

दो

सब दर्जे वाले हो गए
यानी हम ओछे हो गए

एक बड़ा-सा था दालान
अब तो कई कमरे हो गये

सबको अलहदा रहना था
देख लो घर मँहगे हो गए

झरने बन गए तेज़ नदी
राहों में गड्ढे हो गए

हौले हौले बढ़ते रहे
पैदल थे - घोड़े हो गए

हर तिल में दिखता है ताड़
हम कितने बौने हो गए

इतने साल कहाँ थे तुम
आईने शीशे हो गये

बेटे आ गए काँधों तक
कुछ बोझे हल्के हो गए

दिखते नहीं माँ के आँसू
हम सचमुच अंधे हो गए

गिनने बैठे करम उसके
पोरों में छाले हो गए.

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

सचमुच घर जैसा लगता है

मैं एक कॉलोनी में रहता हूँ जहाँ बहुत सारे फ्लैटस हैं. जब भी शाम या सुबह मैं अपनी खिड़कियाँ खोलता हूँ तो उसमें से मुझे बाहर बाग़ में खिलते फूल, टूटे पत्ते, सड़क पर सर झुकाए चलते मजदूर, खिलखिलाते बच्चे, परेशानियों को बांटती गृहणियां, भाग कर बस पकड़ते लोग, फेरीवाले, अल्हड चाल में चलती लड़कियां, अपने आपको घसीट कर चलते वृद्ध और भी बहुत से अलग-अलग दृश्य नज़र आते हैं. इन खिड़कियों से दिखने वाले दृश्यों की विविधता से ही ये महसूस होता है कि मैं एक बस्ती में हूँ किसी बियाबान जंगल में नहीं.

आज जिस किताब का जिक्र मैं कर रहा हूँ वो मेरे फ्लेट की खिड़की की तरह ही है जिसमें जिंदगी के अलग-अलग मंज़र नज़र आते हैं. आम जिंदगी के सुख दुःख को खूबसूरती से समेटती किताब 'आँखों में कल का सपना है' जिस के शायर हैं जनाब अमर ज्योति 'नदीम'. इस किताब की सबसे बड़ी खासियत है इसकी भाषा जो बिना क्लिष्ट शब्दों का आडम्बर ओढे जिंदगी के सारे रंगों को बेबाकी से प्रस्तुत करती है.

दीवारों का ये जंगल जिसमें सन्नाटा पसरा है
जिस दिन तुम आ जाते हो, सचमुच घर जैसा लगता है.

छोटी बहर में हर शायर की कोशिश होती है बेहतर शेर कहने की. क्यूँ की छोटी बहर में ही शायर का असली कौशल नज़र आता है. कम शब्दों में गहरी बात करना इतना आसान नहीं होता जितना कि लगता है.

पानी, धूप, अनाज जुटा लूं/फिर तेरा सिंगार निहारूं
दाल खदकती, सिकती रोटी/इनमें ही करतार निहारूं
तेज़ धार ओ' भंवर न देखूं/मैं नदिया के पार निहारूं

आज हम बहुत बुरे दौर से गुज़र रहे हैं, इंसान इंसान के खून का प्यासा हो रहा है, इंसानियत सिसकती हुई दम तोड़ रही है ऐसे में शायर का दुखी होना जायज़ है. वो ना चाहते हुए भी इनके बारे में लिखने को मजबूर है. शायर आँखें बंद करके आशिक़ और माशूक़ के किस्से नहीं लिख सकता, शराब और शबाब की शान में क़सीदे नहीं पढ़ सकता, अपनी इसी मजबूरी को नदीम साहेब के इन शेरों में देखें :

खेत में बचपन से खुरपी फावडे से खेलती
उँगलियों से खून छलके, मेंहदियाँ कैसे लिखें

हर गली से आ रही हो जब धमाकों की सदा
बांसुरी कैसे लिखें, शहनाइयाँ कैसे लिखें

नदीम साहेब के ये शेर पढ़ने के बाद जिस्म में सिहरन पैदा कर देते हैं, आँखें गीली हो जाती हैं. ये एक शायर की सच्ची आवाज़ का असर ही तो है.

इस किताब में आपको कचरा बीनने वाले बच्चे, तेज धूप में रिक्शा हांकते इंसान, परेशानियों से जूझते बेरोजगार, धर्म और देश के ठेकेदार, लफ्फाजी और चापलूसी करने वाले लेखक, किसान, फुटपाथ पर जिंदगी बसर करते लोग सभी अपनी दास्ताँ सुनाते मिल जायेंगे. ये किताब हमारे आज के हिन्दुस्तान की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है.

> इस किताब की सबसे बड़ी खासियत है इसकी भाषा जो बिना क्लिष्ट शब्दों का आडम्बर ओढे जिंदगी के सारे रंगों को बेबाकी से प्रस्तुत करती है.

'आँखों में कल का सपना है' किताब को अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली ने प्रकाशित किया है. जनाब अमर ज्योति 'नदीम' साहेब का अपना ब्लॉग "random rumblings" है जिसमें समय-समय पर वो अपनी रचनाओं से हमें नवाजते हैं. अमर साहेब ने अंग्रेजी और हिंदी में एम.ए. करने के बाद अंग्रेजी भाषा में पीएच.डी. भी की है. आप अलीगढ़ में रहते हैं. शुरू से आखिर तक एक से बढ़ कर एक कमाल के अशआरों से भरी इस किताब को पढ़ना एक सुखद अनुभूति है. सिर्फ ८६ ग़ज़लों में नदीम साहेब ने सारी दुनिया समेट दी है.

दे दीजियेगा बाद में औरों को मशविरा
फ़िलहाल अपना गिरता हुआ घर समेटिये
फूलों की बात समझें, कहाँ हैं वो देवता
ये दानवों का दौर है, पत्थर समेटिये ■

शिव गौतम
नेपाल की पूर्वी पहाड़ियों में जन्म. नेपाली भाषा में कविताएँ, लघुकथाएँ एवं आलेख लिखते हैं. रचनाएँ विभिन्न नेपाली पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कविताओं की दो किताबें प्रकाशित. १९८५ से अमेरिका में निवास एवं वर्तमान में बोस्टन में रहते हैं. सम्प्रति - हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय में एसोसियेट प्रोफेसर (Biostatistics).
सम्पर्क : shivagau@gmail.com

अन्तराल

'तुम आ गए, बाबु', मेरी माँ कुछ कांपती और हल्के से हांफती हुई आवाज में बोली माँ अब भी मुझे 'बाबु' कहती थी जो नेपाली में छोटे लड़कों को प्यार से कह जाता है.

'हजुर, मैं एयरपोर्ट से सीधा यहाँ अस्पताल आ रहा हूँ. मैं भी माँ को हाँ में जबाव देते वक्त हमेशा नेपाली में बड़ों के लिए आदरार्थी शब्द 'हजुर' ही प्रयोग करता हूँ.

अस्पताल के जिस बिस्तर पर मेरी माँ लेटी थी, मैं भी

उसी बिस्तर के एक कोने पर बैठ गया. मेरे वजन के दबाव से वहां पर विस्तर थोड़ा दब सा गया.

'बच्चे कैसे हैं, और बहू ?'

'वे सब ठीक हैं.' मेरा दाहिना हाथ अपने आप बिस्तर के किनारे-किनारे माँ के दाहिने हाथ के लिए पहुँचा. अपनी सभी क्रूरताओं के साथ, एक ट्यूब से जुड़ी हुई सुई माँ के बाएं हाथ पर बेरहमी से चुभी हुई थी.

मेरी माँ मुझे बहुत प्यार करती थी. हम एक दूसरे के बहुत करीब थे. हम एक दूसरे के इतने करीब थे कि मेरे जीवन के पहले नौ महीनों के लिए हम एक दूसरे के हिस्से थे, हम एक ही शरीर में रहते थे, जीते थे. तब से अबतक मैं किसी और के साथ इतना करीब नहीं हो पाया हूँ.

मैं पैदा हुआ और मेरे जीवन में पहली बार माँ और मैं अलग-अलग शरीर में रहने लगे.

यह मेरे और मेरी माँ के बीच पहली दूरी थी.

'अभी कैसा लग रहा है, आमा ?'

'मैं नहीं जानती हूँ कि वास्तव में क्या हो रहा है.' वह एक पल के लिए चुप हो गयी और उसके बाद फिर से बात करने के लगी, 'मुझे भूख नहीं है, अगर मैं कुछ खा भी लूँ तो सब उल्टी कर देती हूँ, बुखार है, सिर दर्द है. मेरे सारे शरीर पर दर्द हो रहा है.'

'अभी भी बुखार है क्या ?' मैंने माँ के माथे पर अपनी हथेली रख दिया.

मुझे याद है कि जब भी मैं बीमार पड़ता था तो वह भी इसी तरह मेरे माथे पर अपनी हथेली रख देती थी. कई बार तो मेरी बीमारियाँ माँ के उस स्पर्श से ही छूमन्तर हो जाती थीं. उन हथेलियों से होकर बहती स्नेह में लिपटी आनन्द और सुकून की गंगा-जमुना का कोई पर्याय नहीं है.

'लगता है अब मेरा समय आ गया है', माँ ने कहा.

'नहीं, आप ठीक हो जाओगी, आमा', मैं झूठ बोल गया.

मैं जानता था कि माँ फेफड़ों के कैंसर से बीमार पड़ी थी और कैंसर अपनी अंतिम स्टेज में था. नेपाली डॉक्टर की रिपोर्ट मेरे भाई ने फैक्स के जरिए मुझे अमेरिका भेजी थी. उन रिपोर्टों को मैंने अमेरिका के एक फेफड़े के कैंसर विशेषज्ञ को जब दिखाया तो वह नेपाली डॉक्टर के डायग्नोसिस से सहमत हो गया. सच तो यह है कि उसी अमेरिकी डॉक्टर की सलाह पर माँ को देखने काठमांडू गया था.

'डॉक्टर लोग क्या कहते हैं, बाबु.'

'वे कहते हैं कि वहाँ आपके फेफड़ों में थोड़ा-सा पानी भर गया है और कुछ दिनों के बाद सब ठीक हो जायेगा.' मैं फिर से झूठ बोल पड़ा.

मेरे बचपन के दिनों में मेरी माँ अक्सर एक गाना गुनगुनाया करती थी.

'मेरा यह छोटा बेटा
एक दिन बढ़ेगा, पढ़ेगा

अपनी इस माँ को
दूध चावल खाने को देगा...'

जहाँ मैं पल बढ़ रहा था, वहां केवल कुछ खाते-पीते परिवार ही भोजन में दूध और चावल हर दिन जुटा पाते थे. दूध और चाबल को सम्पन्नता की निशानी माना जाता था. वहां पर गेहूं नहीं उगता था और धान के अलावा सभी अनाज जैसे मकई, कोदों को घटिया, गरीबों को खाने लायक समझा जाता था.

'अब तुम बड़े हो रहे हो, अब तुम को पढ़ना और लिखना सीखना चाहिए', एक दिन माँ ने माह में दो बार, अमवस्या और पूर्णिमा पर लगने वाला बाजार से क ख ग वाली एक किताब खरीदकर मेरे हाथ में रखते हुए कहा.

'क्यों?'

'तुम्हें बहुत पढ़ना है, एक बड़ा आदमी बनना है, एक समझदार आदमी बनना है.'

मेरी माँ खुद तो अनपढ़ थी, लेकिन वह यह दृढ़ विश्वास लिए हुए थी कि उसके बेटे को पढ़ना-लिखना चाहिए और यही उसके बेटे को दुनियादारी के रास्ते दिखाएगा, दुनिया से खेलना सिखाएगा, जीना सिखाएगा.

गाँव के नजदीक कोई स्कूल नहीं था. एक पुजारी जो पहाड़ी के दूसरी ओर रहते थे मुझे रोज एक घंटा पढ़ाने के लिए राजी हुए. वह पैसे नही लेते थे. उनकी विद्वता और ज्ञान बिकाऊ नहीं थे. लेकिन वे चाबल, दाल, नमक और मसाले बड़े खुश होकर लेते थे. इस प्रकार उन्हें न तो सरस्वती को बेचने का पाप करना पड़ा, न ही किसी के लिए मुफ्त में काम करना पड़ा.

सरस्वती खुद भी शायद उनकी चालाकी से हैरान रह गई होंगी. पुजारी जी के घर पहुँचने के लिए मुझे तीस मिनट पहाड़ की इस ओर ऊपर पैदल चढ़ना पड़ता था और फिर चोटी में पहुँच कर पंद्रह मिनट पहाड़ के उस ओर नीचे उतरना पड़ता था. महानता और ज्ञान की ओर जाने वाली उस राह पर मैंने अपने कदम रख दिए थे.

'चार और पांच का गुणनफल कितना होता है, आमा?' मैंने माँ से यही पांच या छह महीने बाद पूछा.

'मेरे को क्या पता, पढ़ तो तू रहा है.'

'बीस होता है.' मुझे बहुत खुशी महसूस हो रही थी, पता नहीं क्यों. शायद इसलिए कि अब मैं कुछ जानता हूँ जो मेरी माँ नहीं जानती. मुझे एक बड़ा और बुद्धिमान इन्सान बनाने की हमारी (मेरी और मेरी माँ की) भव्य योजना में, सबसे पहले मेरी माँ को छोटा बनना पड़ा और पहला मूर्ख व्यक्ति बनना पड़ा. अगर मुझे तुलना करने के लिए कोई मुझ से छोटा नहीं मिल सका तो मैं कैसे बड़ा हो सकता हूँ, कोई मुझसे बेवकूफ नहीं मिला तो मैं कैसे बुद्धिमान हो सकता हूँ? मेरे पैदा होने के बाद यह दूसरी घटना थी जो मुझे और मेरी माँ को कुछ और अलग कर रही थी, विपरीत दिशाओं की ओर खींच रही थी. मेरी और माँ की बीच की दूरी कुछ और बढ़ गई थी.

> *यह कैंसर मेरी माँ के दिल से, नस-नस से, हर कोशिकाओं से मुझे निकाल फेंक कर खुद मेरी जगह लेना चाहता था. माँ के अन्दर से मेरा नामो निशान मिटा देना चाहता था. हमारे बीच एक और दूरी पैदा करना चाहता था.*

'आप अमेरिका से कब आए?' एक रिश्तेदार ने, जो अस्पताल में मेरी माँ को देखने आया था मुझे देखते ही पूछा.

'बस आज ही.' थोड़ा-सा सरक कर उसको बैठने का जगह बनाते हुए मैंने जबाब दिया.

'मेरा बेटा भी अमेरिका में ही इन दिनों पर्यावरण इंजीनियरिंग पढ़ रहा है. क्या यह सच है कि पर्यावरण के बिषय पढ़ने वाला इस देश में एक भी आदमी नहीं है?' वह एक सांस में कह गया.

'मुझे पता नहीं.'

थोड़ी देर पहले एक और व्यक्ति जो मेरी माँ को देखने आया था मुझसे बार बार पूछ रहा था कि कैसे आगे की पढ़ाई के लिए अपने बेटे को अमेरिका भेजा सकता है. वह केवल अपने बेटे के बारे में पूरे समय बक-बक करके मुझे तंग कर गया.

मैंने माँ की ओर आँखें घुमाई. वह अस्पताल के सफेद बिस्तर पर लेटी हुई थी. जब मैं छोटा था, मैं अपना सर उसकी गोद में रख देता था और माँ की उँगलियाँ मेरे बालों से खेलने लगती थीं. उस सुकून का भूखा मैं, कभी बहाने बाजी करता था कि मेरे सिर में खुजलाहट हो रही है और माँ अपनी अंगुलियाँ मेरे घने बालों के अंदर घुसाकर धीरे से मेरे सिर को खुजलाती थी. कभी-कभी माँ जब मेरी बालों से जुयें निकालती थी तब भी मेरे बाल माँ की उंगलियों से खेल ही लेते थे. आज भी मैं अपना सर माँ की गोद में रख देना चाहता था और कहना चाहता था 'आमा, देखो तो कहीं मेरे बालों में जूंयें तो नहीं पड़ गए, मेरे सिर में खुजली हो रही है.' लेकिन आज, मेरी उम्र, मेरे मर्दानगी, कालेजों की मेरी डिग्रियां, मेरी विद्वता सब मेरी माँ और मेरे बीच में आकर खड़े हो गए थे. और मेरे बालों में अब जूंयें भी नहीं हैं. मैं माँ से गले लगना चाहता था, बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोना चाहता था. मेरे आँसू बगावत पर तुले थे.

'बाबु, पानी.'

'पानी यहाँ, आमा.'

आगे के पढ़ाई के लिए पहाड़ियों में कोई स्कूल नहीं थे, इसीलिए मुझे देश के मैदानी क्षेत्र में भेज दिया गया. वहाँ के छोटे शहर में मेरे एक चाचा रहते थे. पहली बार के लिए मेरी माँ और मैं अलग छतों के नीचे सोये. माँ और मेरे बीच का अन्तराल, वह दूरी और चौड़ी हो रही थी.

मैं अपनी पढ़ाई-लिखाई में काफी अच्छा कर रहा था. मेरी यह प्रारम्भिक उपलब्धियाँ मुझे उच्च शिक्षा के लिए काठमांडू की ओर ले गये. जल्द ही मैंने कॉलेज भी पूरा किया. मेरी माँ और मैं दोनों ही कम से कम बाहर से तो खुश थे, हमारी योजना काम करती हुई दिखाई दे रही थी, हम मकसद की ओर बढ़ रहे थे. लेकिन माँ और मेरे बीच की दूरी अब केबल चौड़ी ही नहीं, इसमें कई पंख उग आए थे. शुरू में तो यह अन्तराल एक आयामिक था, लेकिन अब बहु-आयामिक हो गया था. अब मैं माँ से कई मायनों में अलग था. शैक्षिक ग्रेड, प्रमाण-पत्र, डिप्लोमा और अन्य बौद्धिक और प्राज्ञिक गतिविधियों द्वारा परोसे गये मेरे विद्वता, महानता और ज्ञान को अपने कंधों पर उठाए मेरी माँ छोटी की छोटी रह गई, बेवकूफ की बेवकूफ बनी रही. मेरी दुनिया में धरती सूरज के चारों ओर घूमती थी क्योंकि किसी ने मुझसे ऐसा कहा था. माँ की दुनिया में सूरज धरती के चारों ओर घूमता था क्योंकि किसी ने उसे यही बताया था. मैंने मुश्किल और परिष्कृत अल्फ़ाज़ में बातें करना शुरू कर दिया और यहाँ-वहाँ अंग्रेजी शब्दों को भी डाल देता था. मेरी माँ शुद्ध ग्रामीण नेपाली बोलती थी. मेरा तेजी से पश्चिमीकरण हो रहा था. अब हम लगभग अलग-अलग संस्कृतियों के, अलग-अलग मजहब के जैसे होने लगे थे. माँ और मेरी बीच की दूरी कई आयामों में और बढ़ गई थी.

फिर मैं अमेरिका चला गया और वहाँ अपनी पढ़ाई खत्म होने के बाद एक नौकरी करने लगा. मैं अब मेरी माँ और मातृभूमि से दूर था. हालांकि दूरी इतनी सारी दिशाओं में बढ़ गई थी फिर भी मैं अपने माँ के दिल में अभी भी था, उनके शरीर के नस-नस में था, उनकी प्रत्येक कोशिका के समाया हुआ था. इस आयाम में अभी तक कोई भी दूरी मौजूद नहीं थी. कैंसर माँ के फेफड़ों से शरीर के अन्य भागों में तेजी से फैल गया था. अब यह कैंसर मेरी माँ के दिल से, नस-नस से, हर कोशिकाओं से मुझे निकाल फेंक कर खुद मेरी जगह लेना चाहता था. माँ के अन्दर से मेरा नामो निशान मिटा देना चाहता था. हमारे बीच एक और दूरी पैदा करना चाहता था. लेकिन मैं जानता था कि मेरी माँ अपनी जान दे देगी लेकिन किसी को मेरी जगह लेने नहीं देगी.

'क्या हुआ?' मैंने माँ से पूछा, अचानक माँ की साँसें उखड़ती दिखाई देने लगी.

'मैं बेचैनी महसूस कर रही हूँ.' माँ बड़ी मुश्किल से, हाँफते हुए कह पाई.

मेरा भाई डॉक्टर को खोजने के लिए चला गया. एक डॉक्टर और साथ में एक नर्स भी आई. नर्स ने माँ को ऑक्सीजन दिया. शायद घंटे दो घंटे के के बाद वह फिर से सामान्य रूप से साँसें लेने लगी.

अब लगभग सोने का समय हो गया था. मैं सुबह से ही अस्पताल में ही था. मेरे भाई ने मुझ से कहा कि मैं उसके घर जाकर कुछ आराम करूं और वह उस रात अस्पताल में रुक कर माँ की देखभाल करेगा. मेरा भाई काठमांडू में ही नौकरी करता था और वही माँ को इलाज के लिए गाँव से यहाँ पर लाया था.

भाई की सलाह मानकर मैं उसके घर गया. मैं एक लंबी उड़ान से और दिनभर अस्पताल में रहकर थक गया था. खाना खाने के बाद मैं बिस्तर पर लेट गया और सोने की कोशिश करने लगा. लेकिन मेरी माँ के साथ मेरे बचपन की यादें मेरे दिमाग में सजीब हो उठीं.

पता नहीं कब मेरे आँखें लग गई. फोन की घंटी ने मुझे जगा दिया. फोन के दूसरे ओर मेरा भाई था. माँ की हालत गंभीर हो गई थी. उस वक्त लगभग आधी रात हो चुकी थी. टैक्सी के लिए देर तक इंतजार करना पड़ा. अंत में एक टैक्सी ड्राइवर मुझे अस्पताल ले जाने के लिए राजी तो हुआ मगर उसने मुझे दुगुना भाडा देने को कहा. मैं टैक्सी की पीछे की सीट पर जल्दी से बैठ गया.

अस्पताल पहुँच कर मैं सीधे माँ के कमरे में आंधी की तरह घुस गया. मेरा भाई कमरे में जमीन पर बैठा हुआ था. मुझे देखते ही उसकी आँखों से आंसू निकलकर उसके दोनों गालों पर गिरे. मैं ने भी उसको आँसू में भी जवाब दिया. मैं जान गया था कि सब खत्म हो गया है. अपने सभी आयामों के साथ मेरी और मेरी माँ के बीच की दूरी सीमाहीन होकर, अन्तहीन होकर फैल गई थी, फिर कभी नहीं सिकुड़ने के लिए.

अगली सुबह पशुपतिनाथ मंदिर के नजदीक बागमती नदी के तट पर मेरी माँ के अंतिम संस्कार के बाद मैं सड़क के किनारे-किनारे पार्किंग की और चल रहा था.

'बाबु' पीछे से एक चीख सुनाई दी.

एक जोरदार झटके के साथ मेरा सर अपने आप इस तरह पीछे मुड़ा कि जैसे मुझ पर एक हजार वोल्ट की बिजली गिरी हो. मैंने देखा एक छोटा-सा बच्चा सड़क पार कर रहा था और उसकी माँ उसके पीछे-पीछे चिल्लाते हुए भागे चले जा रही थी. दूसरी ओर से तेजी से आती एक कार उस बच्चे से टकराते-टकराते अपने ब्रेकों पर से चीख कर रुक गई. माँ ने अपने बेटे को झट से उठा लिया और बाहों में भर लिया.

वह बच्चा अपनी माँ के सीने से जोर से चिपक गया.

■

रामकिशोर पारचा

फिल्म और टीवी के वरिष्ठ पत्रकार और रंगमंच के अभिनेता. फ्रेंच फिल्म समारोहों के सेंसर बोर्ड के भारतीय सदस्य. फ्रांस, इजरायल और भारत में कई फिल्म समारोह आयोजित किये. दिल्ली और जयपुर में होने वाले पहले अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के निदेशक हैं. अनेकों प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित कॉलम प्रकाशित.

सम्पर्क : C-77, Krishi Vihar, opposit-Panchsheel Encleve, Near-Greater Kailsh 1, New Delhi-110048

email : 2photorkp65@gmail.com

सिनेमा की बात

हेट स्टोरी (थ्रिलर सस्पेंस)

सपनों में उलझी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करना कोई बुरी बात नहीं पर उसके लिए खुद को उस गुंजल में फांसकर तबाह कर लेना भी अच्छी बात नहीं. यही नहीं, अगर ये सपने और महत्वाकांक्षा धोखे और बदले की आग से नाता जोड़ लें तो फिर आखिर आप समझ ही नहीं पायेंगे कि इसके अंत में आपके लिए क्या तय हुआ है. बस इतनी सी बात कहती है निर्देशक विवेक अग्निहोत्री की गुलशन देवैया, पाउली दाम, निखिल दिवेदी, मोहन कपूर, जॉय सेन गुप्ता और सौरभ दूबे के अभिनय वाली फिल्म हेट स्टोरी.

फिल्म क्यों देखें : पाउली दाम की बोल्डनेस के लिए.

फिल्म क्यों ना देखें : इसे व्यस्क प्रमाण पत्र मिला है.

—

विक्की डोनर (सोशल कामेडी ड्रामा)

जिन्दगी में कई बार ऐसा समय आता है जब हम किसी के सपनों के पूरे होने की वजह बनते हैं पर खुद अपने ही सपनों को उन्ही वजहों से टूटता और बिखरता देखते हैं. पर ये भी याद रखना जरूरी है कि किसी भी बिखराव के बाद संभावनाएं कभी ख़तम नहीं होती. बस आपको उनमें से चुन लेना होता है कि आप उनके सहारे फिर से कैसे खुद को चलना सिखा सकते हैं. ताकि जिन्दगी चलती रहे. कुछ ऐसे ही नयी संभावनाओं और शुरुआतों की कहानी कहती है निर्देशक शुजीत सरकार की आयुष्मान खुराना, यामी गौतम, अन्नू कपूर, डौली आहलुवालिया, कमलेश गिल और जयंत दास के अभिनय वाली फिल्म विक्की डोनर.

फिल्म क्यों देखें : ऐसी फ़िल्में कम बनती हैं.

फिल्म क्यों ना देखें : ऐसी कोई वजह मेरे पास नहीं.

—

तेज (थ्रिलर)

कहते हैं जिन्दगी से ज्यादा मोहब्बत नहीं करनी चाहिए. इसकी वजह है कि जब हम उसे अपनी होने के भुलावे में आकर उसे जीने की कोशिश करते हैं तभी वह हमें धोखा देकर निकल जाती है. हमसे आगे अकेला छोड़कर. फिर कोई नहीं जो उसे हमारा बना सके. वो खुद भी नहीं. बस कुछ ऐसे लोगों की जिंदगियों का विवरण परदे पर रचने की कोशिश करती है निर्देशक प्रियदर्शन की अजय देवगन, कंगना रानावत, अनिल कपूर, समीरा रेड्डी, बोमन ईरानी, मल्लिका शेरावत, जायद खान, अविका गौर और मोहन लाल के अभिनय वाली फिल्म तेज.

फिल्म क्यों देखें : प्रियदर्शन की उनके तेवर से अलग शानदार एक्शन फिल्म है.

फिल्म क्यों नहीं देखें : ऐसा मैं क्यों कहूँगा.

—

लाइफ की तो लग गई (ड्रामा)

आप जिन्दगी को कितना भी पकड़ने की कोशिश करें वो आपके हाथ में नहीं आएगी. लेकिन जब आप उसे कहेंगे कि जाओ मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं तो एक दिन हमारे पास खुद चलकर आएगी और कहेगी लो जीओ मुझे. पर क्या उसे तब पता होता है कि तब तक तो जिन्दगी की वाट लग गयी होती है और जिन्दगी को ही खुद उसका पता सबसे बाद में चलता है. बस यही छोटा से सन्देश देने की कोशिश करती है निर्देशक राकेश मेहता की प्रद्युम्न सिंह, केके मेनन, मनु ऋषि, रणवीर शौरी, नेहा भसीन, मिष्टी मुखर्जी, टॉम अल्टर, नीरज वोरा और जैकी श्राफ के अभिनय वाली फिल्म लाइफ की तो लग गई.

फिल्म क्यों देखें : जिन्दगी और रिश्तों को समझने के लिए अच्छी फिल्म है.

फिल्म क्यों न देखें : फिल्म की गति कुछ धीमी है.

—

फैटसो (कॉमेडी)

प्रेम करने के लिए चेहरा और शरीर नहीं, दिल का अच्छा होना जरूरी है. मानवीय रिश्तों और उसके सच के कुछ ऐसे ही प्रतीकों को बुनती है रणबीर शौरी, गुल पनाग, पूरब कोहली, नील भूपालम, गुंजन बक्षी, युसूफ हुसैन, राजेन्द्र कला और विनय पाठक के साथ भारती आचरेकर के अभिनय वाली निर्देशक रजत कपूर की नयी फिल्म फैटसो.

फिल्म क्यों देखें : रणवीर शौरी के लिए.

फिल्म क्यों न देखें : अगर फैटसो को कोई अंग्रेजी फिल्म समझ रहे हों.

—

जन्नत टू (थ्रिलर)

जन्नत एक सपना है या सच. कोई नहीं जानता. पर एक बात तय है कि जमीन पर जन्नत की कल्पना एक ऐसी पहेली जरूर है जिसे बुना तो जा सकता है पर अगर आप इसमें उलझ गए तो फिर इसे सुलझाना आपके बस की बात नहीं. हो सकता है आपके खवाबों की ये जन्नत आपको ऐसी दोजख में धकेल दे जहां आपकी मौत और जिन्दगी के बीच फासला सिर्फ आपके देखने भर का ही हो. बस इतना-सा सन्देश देती है कुणाल देशमुख निर्देशित इमरान हाशमी, ईशा गुप्ता, रणदीप हुडा, मनीष चौधरी, राजेंद्र काला, सुमीत निझावन, जीशान अयूब, इमरान जाहिद और आरिफ जकारिया के अभिनय वाली उनकी नई फिल्म जन्नत टू.

फिल्म क्यों देखें : इमरान और रणदीप के लिए.

फिल्म क्यों ना देखें : अगर इसे पहली फिल्म का सीक्वल समझ रहे हों.

—

डेंजरस इश्क (रोमांटिक थ्रिलर)

कहते हैं जनम कोई भी हो, समय, रिश्ते लोग और उनके मंतव्य वैसे ही रहते हैं जैसे वो अपनी किसी दूसरे जन्म में रहे होते हैं. बस रिश्तों और हालातों के कुछ चेहरे बदल जाते हैं. निर्देशक विक्रम भट्ट की करिश्मा कपूर, रजनीश दुग्गल, रवि किशन, जिमी शेरगिल, दिव्या दत्ता, रुसलान मुमताज, आर्य बब्बर, ग्रेसी सिंह और समीर कोचर के अभिनय वाली उनकी थ्री डी तकनीक में बनी नयी फिल्म डेंजरस इश्क भी जनम और पुनर्जन्म के द्वन्द्व से जुड़े प्रेम कहानी के ऐसे ही तत्वों को दिखाने वाली है.

फिल्म क्यों देखें : करिश्मा के लिए.

फिल्म क्यों ना देखें : ऐसा मैं नहीं कहूँगा.

—

इशकजादे (रोमांटिक थ्रिलर)

इश्क तो इश्क है. उसका कोई मजहब नहीं कोई जात नहीं. पर उसमे कोई खोट या छल शामिल नहीं होना चाहिए. अगर ऐसा हुआ तो या वो तो मर सकता है या फिर मार सकता है. बस कुछ ऐसा ही सन्देश देने की कोशिश करती है निर्देशक हबीब फैजल की अर्जुन कपूर, परणीती चोपड़ा, गौहर खान, अनिल रस्तोगी, नताशा रस्तोगी और रतन राठौर के अभिनय वाली फिल्म इशकजादे.

फिल्म क्यों देखें : एक शानदार फिल्म है.

फिल्म क्यों ना देखें : यदि त्रासद अंत वाली प्रेम कहानी पसंद न हों. ▪

'बहता पानी' का विमोचन

न्यूयॉर्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में ४ मई को अनिलप्रभा कुमार के कहानी संग्रह 'बहता पानी' का विमोचन हुआ. दक्षिण एशिया संस्थान के अन्तर्गत 'कहानी-मंच' की ओर से इस कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध लेखिका सुषम बेदी ने की.

डॉ. सुषम बेदी ने अनिल प्रभा के लेखन का परिचय देते हुए कहा कि संवेदनशीलता का प्रेषण उनके कहानी लेखन की विशेषता है. अनिलप्रभा की कहानियां अमरीका में रहने वाले भारतीयों के मूल्यों से जुड़ी हुई कहानियां हैं. उनकी कहानियों में यहां की रोज़मर्रा की स्थितियों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है. वे कहानियों में गहरे तक डूबकर उसको गहन संवेदना के साथ व्यक्त करती हैं.

न्यूयॉर्क स्थित आई.टी.वी. के कार्यक्रम निर्देशक और लेखक श्री अशोक व्यास ने कहा कि अनिलप्रभा जी की कहानियां पढ़ना-सुनना संवेदना की सोई नदी को जगा देता है. उन्होंने इस संग्रह की कहानी 'उसका इंतज़ार' की प्रशंसा करते हुए कहा कि अनिलप्रभा की शैली संवेदनशील पर संयत, भावनात्मक पर व्यावहारिक, विस्तृत आयामों वाली पर बारीकी से गढ़ी हुई शैली है.

'बहता पानी' के विमोचन के अवसर पर अनिलप्रभा कुमार ने अपनी कहानी 'वानप्रस्थ' पढ़ी. उस पर हुई चर्चा अत्यन्त जीवन्त रही. उर्दू विभाग के आफ़ताब अहमद ने कहा, यह कहानी मुझे इतने गहरे तक झकझोर गई कि कहानी ख़त्म होने के बाद भी मैं उसी अवसाद में डूबा बैठा रहा. न्यूयॉर्क की प्रसिद्ध कवियत्री बिन्देश्वरी अग्रवाल ने अनिलप्रभा के कहानी कहने के ढंग की सराहना की तो पंजाबी लेखक संदीप सिंह ने कहा, कहानी लगता है आपकी आंखों के सामने ही घटित हो रही है. इस अवसर पर बिन्देश्वरी अग्रवाल, सीमा खुराना, संदीप सिंह, अशोक व्यास और सुषम बेदी ने भी कहानियां पढ़ीं. कार्यक्रम के अंत में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के हिन्दी-उर्दू भाषा कार्यक्रम के समन्वयक डॉ. राकेश रंजन ने उपस्थित अतिथियों को धन्यवाद देते हुए अनिल प्रभा कुमार को उनके कहानी संग्रह 'बहता पानी' के विमोचन पर बधाई और शुभकामनाएं दीं.▪

डॉ. मधु सन्धु
शिक्षा एम.ए., पी-एच.डी. एक कहानी संग्रह, एक गद्य संकलन, छह आलोचना की किताबों के अलावा पचास से ज्यादा शोध प्रबंधों का निर्देशन. दुनियाभर की नामी पत्रिकाओं में लगातार छपती रही हैं. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर के हिन्दी विभाग में पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष. वर्तमान में विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के मेजर प्रोजेक्ट पर कार्यरत.
सम्पर्क : बी-१४, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर-१४३००५, पंजाब. ईमेल - madhu_sd19@yahoo.co.in

किताब

बंधनों एवं सीमाओं का अतिक्रमण

तोड़ो कारा तोड़ो

'तोड़ो कारा तोड़ो' १९४० में पंजाब स्यालकोट में जन्में कथाकार, नाटककार, व्यंग्यकार, निबन्धकार और संस्मरणकार नरेन्द्र कोहली का स्वामी विवेकानन्द के जीवन और व्यक्तित्व पर आधारित १९९६ में लिखा गया उपन्यास है. इसके प्रथम खण्ड निर्माण में स्वामी जी के जन्म से लेकर अपने गुरु रामकृष्ण परम हंस तथा जगन्माता महाकाली के सम्मुख अंतर्द्वंद्व तथा सम्पूर्ण आत्मसमर्पण तक की घटनाएं चित्रित हैं. दूसरे खण्ड साधना में स्वामी विवेकानंद की साधना, गुरुसेवा, रामकृष्ण परमहंस का रोग एवं निर्वाण, स्वामी जी द्वारा किराए के मकान में मठ की स्थापना कर, सभी गुरुभाइयों को उसमें एकत्रित कर स्वयं अज्ञात संन्यास के लिए निकलने की कथा है.

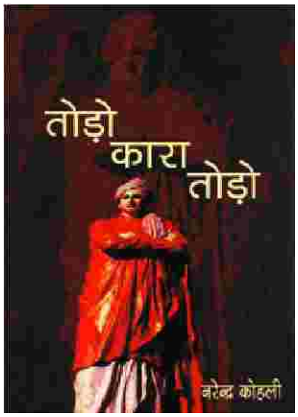

नरेन्द्र कोहली ने इससे पूर्व भी प्रख्यात कथाओं को लेकर उपन्यासों की रचना की है. उनका 'अभ्युदय' उपन्यास रामकथा पर आधारित है. 'अभिज्ञान' कृष्ण कथा पर आधारित है. 'महासमर' महाभारत की कथा लिए है. लेकिन लगभग एक हजार पृष्ठों में लिखा गया उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' निकट अतीत की घटना पर आधारित है. स्वामी जी के जीवन की सभी घटनाएं सप्रमाण इतिहास में अंकित हैं. यही नरेन्द्र कोहली की सीमा रेखा है. अपनी कल्पना और चिन्तन को आरोपित करने का दुस्साहस उपन्यासकार न कहीं दिखा सकता था और न कहीं उसने दिखाया है. अंग्रेजी और बांगला में स्वामी जी पर विस्तृत, प्रामाणिक, विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखित जीवनियां उपलब्ध हैं. लेकिन उनमें उनके आध्यात्मिक, साधक और समाज सुधारक रूप की ही प्रमुखता है. नरेन्द्र कोहली ने उनके सम्पूर्ण जीवन और युग पर भी दृष्टिपात किया है.

सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के बावजूद 'तोडो कारा तोड़ो' में नरेन ने बहुपक्षीय काराओं को तोड़ा है. उन्होंने भाषागत कारा को तोड़ा. इस देश में शिक्षा उपार्जन से जुड़ी है और उपार्जन के लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य है. उन्होंने देश को संस्कृत वाड़मय की ओर भी मोड़ा. आठ वर्षीय नरेन को विद्यासागर मैटोपोलिटन इंस्टीच्यूट में दाखिल करवाया जाता है. इस आयु में ही अंग्रेजी पढ़नी पड़ी और नरेन के अंदर प्रश्न ही प्रश्न उमड़ने लगे- जो बच्चा अपनी मां को अभी पहचानता भी न हो, उसे यदि किसी अन्य स्त्री की गोद में दे दिया जाएगा, तो उसके मन में अपनी मां के प्रति प्रेम कैसे विकसित होगा.—— आरम्भ से ही अंग्रेजी पढ़ाकर आप इस देश में एक ऐसा नया वर्ग उत्पन्न करेंगे, जिसे न इस देश का परिचय होगा, न इस देश से सहानुभूति. देश के भीतर ही देश के शत्रु पैदा करना चाहते हैं आप. (पृ १०१) उन्होंने भारतीयों की अंग्रेजों के प्रति घृणा की कारा को भी तोड़ा है. न उन्हें विदेश जाने से परहेज था, न पाश्चात्य संगीत से.

पिता का असमय देहांत, गिरती हुई आर्थिक स्थिति, अन्न-वस्त्र का अभाव, मकान संबंधी मुकदमा-स्थितियां काफी विपरीत थी. काका हजारों बीघे जमीन हड़प लेते हैं. सारा परिवार किराए के मकान में रहता है. नरेन नौकरी के लिए दर-दर ठोकरें खाता है. मूलतः अपनी आदर्श प्रकृति के कारण स्वामी जी कभी भी परिवार के आदर्श पुत्र नहीं बन सके. घोर आर्थिक संकट के समय भी मां और भाइयों को भूखा, प्यासा, असहाय और असुरक्षित छोड़कर, पढ़ाई को लात मार कर ठाकुर की सेवा में जुट गए. मां का दर्द उन्हें छोटा दिखाई देता है. मां के वेदनामय स्वर- तेरे गुरु की सेवा तो उनका कोई और शिष्य भी कर लेगा, किन्तु हमारा पालन करने वाला दूसरा पुत्र कहां है? अपने गुरु की सेवा तूँ करेगा, ईश्वर नहीं और हमारा पालन ईश्वर करेगा, तूँ नहीं. (पृ १२९) उन्हें विचलित नहीं करते. यानी वैयक्तिक जीवन में उन्होंने द्वंद्व की कारा को तोड़ा. मां भाइयों को देख द्वंद्व उत्पन्न होता कि क्यों भगवा त्याग वे वापिस नहीं चले जाते, पर शीघ्र ही उन्होंने निर्णय लिया कि वे सांसारिक जीवन के लिए नहीं हैं. उनके शब्दों में- बहता पानी, रमता जोगी. नदी अपने किनारों को उतना ही सींचती है, जितना मार्ग बनाने के लिए आवश्यक हो. (पृ. ४५१)

स्वामी जी के गुरु रामकृष्ण परम हंस गृहस्थ थे. श्री मां उनके लिए पूज्य थी, किन्तु गृहस्थ को उन्होंने बचपन से ही कारा मान लिया. स्त्री स्वर्ण मृग मांगती है और पुरुष वन-वन भटकता है. (पृ. ५१) उन्होंने गृहस्थ का वरण नहीं किया. मां की चिंता नहीं लगाई. गुरु को मृत्यु के मुख में छोड़ बोध गया चले गए. ठाकुर की मृत्यु के उपरान्त गुरु भाइयों के मोह की कारा को भी छोड़ दिया. -संन्यासी को तो निरन्तर निर्मोही बने रहने का प्रयत्न करना है. अनासक्ति ही तो मूल जीवन मंत्र है. (पृ. ४२४)

इन काराओं को तोड़कर ही विवेकानंद तपोभूमियों के दर्शन कर सके. ऊँची चोटियों तक पहुँचे. जिस प्रकार स्वामी जी ने संन्यास की विरासत दादा से पाई, उसी प्रकार सामाजिक कुरीतियां तोड़ने की विरासत पिता से पाई. ब्रह्म समाज के मांस-मदिरा निषेध से प्रभावित हुए. पिता कहते थे कि भारतीय ग्रंथों में कही भी सती प्रथा का समर्थन नहीं. कुंती, कौशल्या पति की मृत्यु के बाद जीवित रही. जातीय कारा को तोड़ा. पिता मुस्लिम दुकानदार से खाने के लिए संदेश लाते. उनके अनुसार दुकानदार नहीं देखता कि संदेश हिंदू खरीद रहा है या मुस्लिम. उनके विचार में - जाति भंग हो जाए तो आत्मा का विकास होता है. बुद्धि उदार होती है और अनेक लोगों के प्रति व्यवहार स्नेहयुक्त हो जाता है. (पृ. ८७)

ताजमहल को भारतीय वास्तुकला के उत्कर्ष का नमूना मानते स्वामी जी ने वास्तुकला संबंधी धारणाओं को भी तोड़ा है. क्योंकि वास्तुकला को जन्म धर्म नहीं देते, उसका जन्म देश की जलवायु, इतिहास, भूगोल से होता है. ताजमहल बनाने और बनवाने वाले वास्तुकार मुस्लिम, हिंदू न होकर हिंदुस्तानी थे.

धार्मिक कारा तोड़ने के संस्कार भी स्वामी जी ने अपने पिता से ही पाए. पिता विश्वनाथ धर्म के संदर्भ में इतने समतावादी थे कि हिंदू के घर में जन्म लेकर भी प्रतिदिन प्रातः उठकर बाईबल पढ़ते थे. हाफ़िज़ की कविताएं उन्हें प्रिय थी. कहते थे- कृष्ण कहते हैं तुम कर्म करो, फल मैं दूँगा. दूसरी ओर ईसा कहते हैं कि खोजो तो पाओगे. खटखटाओगे तो द्वार खुलेंगे. (पृ. ३१)

उन दिनों पादरी घर-घर घूम कर बाइबल की प्रतियां देते थे, ईसाई घर्म का प्रचार करते थे. इसीलिए नरेन केशवचंद्र से प्रभावित थे. क्योंकि वे भी ईसाई धर्मप्रचारक पादरियों की ही तरह सड़कों, चौराहों पर हिंदू धर्म का स्वरूप समझाते थे. यद्यपि विवेकानंद के पास कमंडल और झोले के अतिरिक्त एक प्रति गीता की और एक प्रति imitation of god की रहती है. स्वामी जी का भारत भ्रमण मठाधीशों की कारा तोड़ता है. मठ मोह है और अगर मोह ही पालना है तो गृहस्थ बनने में क्या दोष है? कहते हैं- मेरे धर्म में सम्प्रदाय की कोई सीमा नहीं है. (पृ. ४१४)

स्वामी जी ने विलास और ऐश्वर्य की कारा को तोड़ा. उच्च कुल में जन्म लेने के बावजूद भिक्षाटन को अपनाया.

स्वामी जी के समय बंगाल में तंत्र मंत्र का बोलबाला था. उन्होंने इस कारा को भी तोड़ा. हिंदू धर्म की मूलभूत धारणाओं और समानताओं की खोज करके प्रादेशिकता और प्रांतीयता की कारा को तोड़ा.

ईश्वर को पाने के लिए अहंकार की कारा को तोड़ना अनिवार्य है. इसीलिए स्टेशन मास्टर शरद को दीक्षित करने से पूर्व उसे भिक्षापात्र देकर स्टेशन के सभी कुलियों से भिक्षा लेने के लिए कहा.

परामनोविज्ञान की स्थितियों से भी नरेंद्र कोहली ने अपने नायक का साक्षात्कार दिखाया है. परालौकिक अनुभव नरेन को बेचैन करते हैं. चौदह वर्षीय नरेन पंद्रह दिन बैलगाड़ियों की यात्रा कर पिता के पास रायपुर पहुँचता है. रास्ते में नरेन की चेतना लुप्त होने लगती है. एक अद्‌भुत अनुभूति होती है. चेतना लौटने पर वह सोचने पर विवश हो जाता है- हे प्रभु! क्या तुम मेरे पास आए थे मेरे प्रभु? यह कैसा अनुभव था ईश्वर. (पृ. १७८)

नानी के घर में समाधिस्थ नरेन देखता है कि कमरे में सहसा प्रकाश हो गया. भगवान बुद्ध जैसी एक प्रशान्त संन्यासी की मूर्ति प्रकट हुई. ध्यानस्थ अवस्था में वह एक बार महाशून्य से घिर जाता है. कमल पर गेरुए वस्त्रों में बैठा एक संन्यासी दिखाई देता है. अकस्मात् लगता है कि वह संन्यासी और कोई नहीं, वह स्वयं है. वह कुटिया, दंड, कमंडल, चर्ममृग उसी के हैं. समाधिस्थ ठाकुर के स्पर्श अपनी सम्मोहन शक्ति से उसके अहं भाव को शून्य में विलीन कर विचित्र संसार में ले जाते हैं. एक रात नरेंद्र कमरे का किवाड़ लगाकर बिछौने पर पड़ा था. ठाकुर ने एकाएक आकर्षित कर उसके शरीर के भीतर जो है, उसे दक्षिणेश्वर में उपस्थित करा दिया. उसके बाद अनेक बातें और उपदेश सुनाकर लौटा दिया. शरत के घर प्रथम बार आए नरेन को लगता है कि यह

> *काराओं को तोड़कर ही विवेकानंद तपोभूमियों के दर्शन कर सके. ऊँची चोटियों तक पहुँचे. जिस प्रकार स्वामी जी ने संन्यास की विरासत दादा से पाई, उसी प्रकार सामाजिक कुरीतियां तोड़ने की विरासत पिता से पाई.*

मकान उसका पूर्व परिचित है, पूर्व जन्म में देखा हुआ है. शिवरात्रि की रात जैसे ही नरेन समाधि लगाता है, उसके शरीर में कोई अपूर्व ऊर्जा, कोई अद्‌भुत शक्ति उत्पन्न होने लगती है. मानो उसकी आत्मा गुरु आत्मा हो गई हो अथवा कोई यौगिक शक्ति या कुण्डलिनी जाग्रत हो गई हो. मृत्युपरांत ठाकुर जब तब प्रकट हो श्री मां को सुहाग चिह्न उतारने से मना करते हैं. घने वनों में, निर्जन रास्तों में, सुदूर गंगा तटों पर विवेकानंद की कोई अज्ञात व्यक्ति विविध देशों में अन्न वस्त्र से सहायता करता है. स्वामी जी को मृत ठाकुर के बंद कमरे में साक्षात् दर्शन होते हैं. श्री मां कई बार ठाकुर के शरीर को स्वामी के शरीर में प्रविष्ट होते देखती हैं- इन सब को हम परामनोविज्ञान की स्थितियां या अनुभूतियां कह सकते हैं.

नरेंद्र कोहली ने गुरु श्री राम कृष्ण परमहंस का भी वर्णन किया है. वे दक्षिणेश्वर में काली मंदिर के पुजारी थे. भाव समाधि लगाते थे. अपनी पराशक्ति से वे जान लेते हैं कि नरेन ईश्वर का रूप है- प्रभु आप वही पुरातन ऋषि नर रूपी नारायण हैं. जीवों का इस दुर्गति से उद्धार करने के लिए आपने पुनः संसार में अवतार लिया है. (पृ. २८५)

नरेन्द्र कोहली ने पूरे उपन्यास में यह तो कहीं नहीं कहा कि रामकृष्ण परमहंस ने १९ बार धर्म परिवर्तन किया था. यह अवश्य स्पष्ट किया है कि वैष्णव शाक्त और शैव तो क्या वे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई में भी कोई अंतर नहीं करते थे. सत्य की खोज में शंकराचार्य भटके थे. यदि उतना न भटकते तो क्या शंकराचार्य बन पाते. राम चौदह वर्ष भटक-भटक कर अवतार बन गए. नरेंद्र भी ज्ञान प्राप्ति की इच्छा लेकर भारत भ्रमण के लिए निकले. उनका लक्ष्य देश और आत्मा की समस्याओं का समाधान करना था. नरेन्द्र कोहली ने एक तथ्यात्मक जगत को उपन्यास का कलेवर देकर साहित्य के पाठकों के समक्ष एक दार्शनिक, समाज सुधारक, प्रगतिवादी, आध्यात्मिक नेता का जीवन और दर्शन परत-दर-परत खोला है.■

उपन्यासकार : नरेन्द्र कोहली
उपन्यास : तोड़ो कारा तोड़ो
प्रकाशक : किताब घर, नई दिल्ली
वर्ष : १९९६

नीरजा द्विवेदी

५ मार्च, १९४६ को दातागंज, बदायूं में जन्म. शिक्षा - एम.ए. इतिहास. प्रकाशित पुस्तकें : द्वादी माँ का चौरा, पटाक्षेप, मानस की धुँध (कहानी संग्रह), कालचक्र से परे (उपन्यास), गुनगुना उठे अधर, गाती जीवन वीणा (कविता संग्रह) एवं निष्ठा के शिखर बिंदु, अशरीरी संसार तथा स्मृति मंजूषा (संस्मरण) प्रकाशित. देश-विदेश में दो दर्जन से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित.

सम्पर्क : ११३७, विवेकखंड, गोमतीनगर, लखनऊ. ईमेलः neerjadewedy@yahoo.com

लघुकथा

शान्तिधाम

भीड़-भाड़ वाले सदर बाज़ार की प्रमुख गली में 'जयहिन्द टी स्टाल' के सामने दूसरी तरफ़ एक दुकान अब्दुल कसाई की है जिसके सामने पौलिथिन का झालरदार पर्दा टंगा है. बगल में एक पिंजड़े में कुछ मुर्गियां बन्द हैं. एक लड़का मुर्गियों से खचाखच भरे दो पिंजड़े ट्रक से नीचे उतार कर रखता है और पहले से रखे पिंजड़े की बची हुई मुर्गियों को बाहर निकालकर ऊपर वाले भरे पिंजड़े में ठूंस देता है.

पिंजड़े में कुछ अल्हड़-जवान मुर्गे हैं, कुछ मुर्गियां हैं और कुछ चूज़े हैं. नये लाये गये चूज़ों में से एक पहले लाई गई अपनी मां मुर्गी को वहां देखकर खिल उठता है. प्रसन्नता से फ़ुदक कर वह मां के समीप आता है. मां के पंखों में चोंच घुसा कर व चोंच लड़ा कर प्यार जताता है, चूं-चूं करता मां से सटकर बैठ जाता है. अपने बच्चे को देखने की आशा छोड़ चुकी मुर्गी मां बच्चे के अन्धकारमय भविष्य की आशंका से विचलित होकर उसे अपने पंखों में दबा लेती है. दो दिन से दाना-पानी के बिना उसकी अपनी जो दुर्गति हो रही थी, वही अब उसकी सन्तान की भी होने वाली थी. कितनी सौभाग्यशाली थीं वे मुर्गियां जिन्हें ग्राहक पसन्द कर ले जा चुके थे या जिनको अब्दुल्ला का तेज़ चाकू हलाल कर चुका था.

दोपहर होते-होते तेज़ धूप निकल आई. पिंजड़ों पर धूप पड़ने से मुर्गियां भूखी-प्यासी तड़पने लगीं. दाने को कौन कहे दो बूंद पानी तक के आसार न थे. मुर्गी मां का तो और बुरा हाल था. परसों यहां आने के पूर्व उसे थोड़ा दाना चुगने को मिल गया था और चलने के पूर्व उसने रास्ते में पड़ने वाली नाली से चोंच मारकर कुछ पानी पी लिया था. जब उसे दोनों पैर बांधकर, उल्टा लटकाकर लाया जा रहा था. उसे अपनी पीड़ा से अधिक मां से बिछुड़ने पर अपने बच्चों की हृदयद्रावी चीत्कारें द्रवित कर रही थीं. पिंजड़े में ठुंसे हुए उसका परसों का दिन निराहार, निर्जल बीत गया. कल मंगलवार था अतः बहुत से हनुमान भक्त मुर्गी लेने नहीं आये. साथ वाली कुछ मुर्गियों के कष्टों का एक-एक करके अन्त हो गया पर वह बेचारी इतनी सौभाग्यशाली नहीं निकली. उसके भाग्य में अभी भूखे-प्यासे तड़पना शेष था.

पिंजड़े में नये आये जवान मुर्गे ख़तरे से अनजान नहीं थे परन्तु भय की भावना को दरकिनार करके वे कमसिन मुर्गियों से छेड़छाड़ करने से बाज़ नहीं आ रहे थे. चूज़ा मां से लिपटकर भूखा-प्यासा चिल्ला रहा था. अब्दुल्ला बीच-बीच में आकर पिंजड़े पर ज़ोर से हाथ मारकर या डन्डा फ़टकार कर मुर्गियों को शोर मचाने को डपट जाता. शाम होते-होते कई मुर्गियां अब्दुल्ला के साथ गईं और वापस नहीं आईं तो चूज़े ने मां से प्रश्न किया- 'मां दूकान का मालिक इन मुर्गियों को कहां ले जाता है? जिन्हें वह ले गया था वे कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं.' मां दुविधा मे पड़ गई कि अपने नन्हे चूज़े को क्या उत्तर दे? कुछ सोच कर वह बोली- 'वे सब शान्तिधाम गई हैं.'

अब तक बचे हुए लगभग सभी मुर्गे-मुर्गियों की स्फ़ूर्ति एवं ऊर्जा समाप्त हो चुकी थी. सब पिंजड़े में धूप से कुम्हलाये पुष्पों की भांति गर्दन झुकाये बैठे थे. चूज़ा बार-बार अपनी मां से दाना-पानी मांग रहा था और मुर्गी मां उसकी कातर दृष्टि का सामना नहीं कर पा रही थी. इतने में अब्दुल्ला ने आकर मुर्गी मां को टांगें पकड़ कर बाहर घसीटा तो चूज़ा बिलखने लगा. अपना अन्तिम समय निकट समझ कर मुर्गी मां को अपनी पीड़ा का अन्त होता दृष्टिगोचर हुआ परन्तु जब उसकी दृष्टि अपने चूज़े पर पड़ी तो उसकी ममता बिलख उठी. अनुनय कर वह अब्दुल्ला से बोली- 'आपकी बहुत कृपा होगी यदि आप मुझसे पहले मेरे चूज़े को ले जायें.'

'कैसी मां हो तुम जो अपने सामने अपने बच्चे की मौत चाहती हो?' अन्य मुर्गियों ने उसे धिक्कारा. अब्दुल्ला ने भी चकित होकर उसकी ओर देखा तो मुर्गी मां बोली- 'मेरा बच्चा भूखा-प्यासा तड़प रहा है. अभी तक तो वह मुझसे लिपट कर सान्त्वना पा रहा था. मेरे जाने के बाद वह बिचारा अनाथ न जाने कब तक तड़पेगा?' अब्दुल्ला ने व्यंग्य से मुर्गी मां की ओर देखा और उसे घुड़कते हुए उसकी टांगें पकड़ कर उसे बाहर खींचने लगा. मुर्गी मां अपने चूज़े को धीरज बंधाते हुए बोली- 'तुम रोना नहीं, मैं शान्तिधाम जा रही हूं. तुम्हारे लिये दाना-पानी की व्यवस्था करके तुम्हें अपने पास बुला लूंगी.' चूज़ा आस भरे नेत्रों से अब्दुल्ला के द्वारा मां को ले जाये जाते देखता रहा.■

गर्भनाल पत्रिका का प्रत्येक अंक हर दृष्टि से सम्पूर्ण एवं प्रशंसनीय है. अंक-६६ के सम्पादकीय में स्वामी विवेकानंद जी के जीवन की अमूल्य झांकियाँ देखीं. मुद्दा शीषक के अंतर्गत हिन्दी भाषा के उत्थान और नई पीढ़ी को अपनी भाषा के प्रति जागरूक रखने के प्रयास के आलेख रुचिकर लगे. विजय सतीजी ने तार सप्तक की कीर्ति चौधरी जैसी विशिष्ट कवियित्री को स्मरण करते हुए हमें भी उनसे परिचित करवाया. उन्हें हमारी विनम्र श्रद्धांजलि. महेंद्र शर्माजी के 'विचार' आलेख के अंतर्गत उन्होंने जिस घटना को उद्घाटित किया गया है वो सम्भवतः बहुत से संयुक्त परिवारों की गाथा है. कुल मिला कर सभी कहानियाँ, स्थाई स्तम्भ, कवितायें रुचिकर लगीं. शैफालीजी की 'मुक्ति' रचना सारगर्भित लगी. उन्हें हमारी बधाई पहुचाएं. अंत में सभी लेखकों रचनाकारों को आपकी पत्रिका के माध्यम से हमारा विनम्र धन्यवाद. पत्रिका की उत्तरोत्तर सफलता के लिए हमारी शुभ कामनाएं.

शशि पाधा, अमेरिका

'गर्भनाल' पत्रिका का नया अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई. सारी सामग्री पठनीय और सराहनीय है. शुभकामनाओं सहित.

शकुन्तला बहादुर, कैलिफ़ोर्निया

गर्भनाल पत्रिका के प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत बधाई. स्थाई स्तम्भ हमेशा की तरह ज्ञानवर्धक और रोचक हैं. मुझे बातचीत का स्तम्भ हमेशा से ही प्रेरित करता है. सबसे सीखने का मौका जो मिलता है. प्रश्न उत्तर का स्तम्भ रोचक है. गीता सार से हमें अपनी परम्परा से जुड़े रहने का मौका मिलता. सभी लेखकों को भी बहुत-बहुत बधाई.

अदिति मजूमदार, अमेरिका

आपने पहिली तारीख को गर्भनाल प्रेषण करने का कीर्तिमान जारी रखते हुए एक तारीख को ही ६६वां अंक प्रेषित कर दिया.बधाई. एक गाना चलता था बहुत पहिले - खुश है ज़माना आज पहिली तारिख है - जो महीने भर की तनख्वाह के संदर्भ में होता था. मैं इसे एक तारीख को गर्भनाल प्राप्ति से होने वाली खुशी के सन्दर्भ से देखता हूँ.

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

'गर्भनाल' पत्रिका नियमित रूप में भेजने के लिए आभारी हूँ. इस बार के संपादकीय को पढ़कर कुछ बातें मन में आयी, कभी संभव हो तो प्रत्यक्ष चर्चा करेंगे. ऐसी सुन्दर पठनीय पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए हार्दिक अभिनन्दन व शुभेच्छा.

अनिल वर्तक

विश्व के समक्ष भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा की पुनःस्थापना करने वाले और राष्ट्र की नसों में नवजीवन रूपी रक्त का संचार करने वाले कर्मयोद्धा स्वामी विवेकानन्द से अपनी बात प्रारम्भ करने वाले 'गर्भनाल' परिवार को बहुत-बहुत साधुवाद!

दिवास्वप्न से जागकर हिन्दी को बचाने का मुद्दा गम्भीर भी है और हमारी अनिवार्यता भी, क्योंकि हमारे बच्चे क्या बोल रहे हैं? इसे समझते हुए हमें आज और अभी यह निर्णय एवं संकल्प करना होगा कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ़ एक लड़ाई लड़ना है और अत्यन्त हर्ष के साथ-साथ गर्व का विषय है कि 'गर्भनाल' ने भी यह बीड़ा उठाया है. आशातीत सफलता की मंगलकामना.

डॉ. विनोद कुमार, जालन्धर

गर्भनाल का मई अंक बेहद पसंद आया. खासतौर से 'अपनी बात' में स्वामी विवेकानंद का जीवन दर्शन और शैफालीजी की कविता 'मुक्ति'. अगर दोनों पर गौर करें, तो ये विषय एक-दूसरे से सम्बंधित हैं. मुक्ति पर स्वामीजी के विचार उस जमाने के सभी सुमाज सुधारकों से अलग व अनोखे थे. अपने गुरु भाइयों को लिखे पत्र में उन्होंने साफ कहा है कि 'भाई, मुक्ति न मिली तो न सही. एक-दो बार नर्क का चक्कर लगा आने में बुराई ही क्या है!' वास्तव में वे दुनियादारी के जंजाल से पीछा छुड़ाकर तथाकथित मोक्ष मार्ग को अपनाने के बजाय निर्धन, भूखे, रोगी, निरक्षर और शोषितों की मुक्ति चाहते थे, ताकि वे कम से कम यह तो महसूस कर सकें कि वे भी मनुष्य हैं. बंगाल में पैदा हुए क्रांतिकारियों के अंतहीन सिलसिले के पीछे स्वामीजी के शब्दों की बहुत बड़ी प्रेरणा थी. करीब सौ साल पहले कहे हुए उनके शब्द आज भी प्रासंगिक हैं.

राजीव शर्मा, जयपुर

गर्भनाल देखता रहा हूँ. सज्जा आकल्पन सब उम्दा कोटि का है. मैटर भी प्रवासियों के लिए बहुत स्तरीय होता है. इस अंक में भाई मनोज श्रीवास्तव का रामचरित मानस पर और हिंदी के भावी अस्तित्व पर डॉ. ओम विकास का आलेख अच्छा लगा है. बधाई.

ओम निश्चल, नई दिल्ली

गर्भनाल का मई अंक अच्छा लगा. चित्र व कवितायें सभी अच्छी हैं विशेषकर चूल्हा व मुक्ति. 'बच्चे कैसी भाषा सीख रहे हैं' भी अच्छा है. पूरी पत्रिका उत्कृष्ट है, पूरी पत्रिका मुद्रित रूप मे आने पर और अच्छी तरह पढ़ पाऊँगी.

बीनू भटनागर, दिल्ली

आपकी बात

गर्भनाल का ताजा अंक पढ़ा, बहुत अच्छा लगा. आप इस ज़माने में हिन्दी साहित्य की ऐसी अनूठी पत्रिका निकल रहे हैं ये तो बहुत ही जीवट का काम है. आजकल ऑडियो विजुअल साधनों ने लोगों की रुचि बदल दी है जिसके कारण साहित्यिक पत्रिकाओं का यूं ही अकाल जैसा पड़ गया है. आपका प्रयास स्तुत्य है.

गोविन्द प्रसाद बहुगुणा, बंगलुरु

मेरे ई-मेल पर आपकी सम्मानीय पत्रिका गर्भनाल प्राप्त हुई. हिंदी में इतनी अच्छी ई-पत्रिका देख कर मन प्रसन्न हो गया. सभी स्तरीय रचनाओं के लिए आपको साधुवाद.

चंद्रभान भारद्वाज

निःसंदेह गर्भनाल अति सारगर्भित ई-पत्रिका है. मैंने जबसे देखा, पढ़ा तब से हमेशा पत्रिका के आने वाले अंक के बारे में उत्सुकता बनी रहती है. इसकी आयु लम्बी हो.

पंचानन साहू, यूको बैंक, भुवनेश्वर

गर्भनाल का ताजा मई-२०१२ अंक ईमेल करने के लिए धन्यवाद. विचार लेख बहुत प्रासंगिक हैं. पढ़कर बहुत खुशी हुई. शुभकामनाएँ.

अब्दुल खान

गर्भनाल का ताजा ६६वाँ अंक बहुत ही रुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक है. मैं आपका ऋणी हूं. विभिन्न प्रकार के लेखा-जोखा, हमारी प्राचीन संस्कृति से जुड़ी हुई कहानियाँ इत्यादि दिल को छू गई. हिन्दी भाषा जो हमारी राष्ट्र भाषा है उसके प्रचार के लिये उठाये हुए आपके कदमों के लिये ढेर सारी शुभकामनाएँ. गर्भनाल का संदर्भ हमारी जन्मभूमि से है जिसे हम माँ के तौर पर भी पुकारते हैं. इसकी देखभाल करना हमारा कर्तव्य है. इस विषय पर भी आलेख प्रकाशित करें.

श्रीधर के. गणपति, मुंबई

गर्भनाल पत्रिका का ६६वाँ अंक मिला. मेरे ख्याल से ये बहुत वैचारिक-विद्रोही पत्रिका है. आपने बहुत प्रबुद्ध लेखकों को इससे जोड़ लिया है. बधाई एवं शुभकामनाओं सहित.

नीलिमा कुलश्रेष्ठ, अहमदाबाद

गर्भनाल मई-२०१२ अंक मिला. छायावाद की ओर झुकी-झुकी वायवी रहस्यवादी सी कवितायें और यथार्थ की ठोस-सख्त ज़मीन पर खड़ी कहानियां. एक सच यह भी कि भारत अब मदर लेण्ड नहीं रहा, ग्रेंड मदर लेण्ड बन चुका है. महेंद्र देवेसर दीपक की 'सोना लाने पी गए' व्यावहारिक और व्यावसायिक चिंतन को उजागर करती है. पुराने जमाने की बात है कि सोना लेने पी सात समुन्दर पार जाते थे और आज विदेश की धरती पर कारावास के कारण पी की अनुपस्थिति में भी हाउस वाइफ पत्नी वेलफेयर स्टेट की उपलब्धियों और अपनी दूसरी आय से किलो-किलो सोना बना लेती है, अच्छी कहानी है.

मधु संधु, अमृतसर

मुझे आपकी हिंदी ई-पत्रिका 'गर्भनाल' देखकर और पढ़कर बहुत सुखद अनुभूति हुई. वास्तव में यह एक गंभीर पत्रिका है. केवल प्रवासी जगत के लिए ही नहीं अपितु हम सभी के लिए. आप इसे और उपयोगी बनायेंगे तो बहुत बड़ी समाज सेवा होगी.

डॉ. कन्हैया त्रिपाठी

गर्भनाल के ६६वें अंक में अपना लेख प्रकाशित हुआ देखकर बहुत अच्छा लगा. इस अंक में अर्चनाजी द्वारा लिखित जापान अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के आयाम अच्छी रपट है. पहली बार जाना कि जापान में भी हिन्दी सम्मेलन होते हैं और वहाँ भी हिन्दी को पसन्द किया जाता है. आशाजी द्वारा लिखित 'प्रवासी भारतीय सम्मेलन की याद' अच्छी यादें हैं जो वे भारत से ले गई. ये सच है कि प्रवासी भारतीय सम्मेलन के लिए इस बार जयपुर को विशेष सजाया गया, हम भी खुश कि चलो सफाई तो हुई, हरियाली तो की सरकार ने सम्मेलन के बहाने ही सही. महेन्द्रजी का आलेख पढ़ा. एक जगह उनके बेटे गलत हैं पर गुस्सा वाजिब है. अपने बेटे को प्यार से समझाये कि वो अपने स्तर पर सही रहे, वोट न देना बहुत बड़ी गलती है. यदि किसी को वोट नहीं देना तो धारा ४९ ओ का प्रयोग करे यानि अगुली पर स्याही पर वोट किसी को नहीं, इससे वोट कानूनी रूप से निरस्त होगा व अपराधी तत्व उनका वोट अपने पक्ष में नहीं कर पायेंगे, अभी तो उनका वोट खुला रहने से कोई भी अपने पक्ष में डाल लेता है. मेरी सहेली कि डयूटी चुनावों में थी. बोली पाँच बजे कुछ सशस्त्र लोग आये और न डाले गये वोट अपने पक्ष में डाल के चले गये, हमारे ऊपर तो बन्दूक की नोक थी. बोलते तो मरते न बोलते तो भी मरने बराबर हैं. लोगों की गलती की सजा हम क्यों भुगतें.

बबीता वाधवानी, जयपुर

Thanks. The magazine is very useful. I will read them. Regards,

Basant Mehta

I am very thankful to you for introducing me with such a nice attempt of your team. I read the magazine and found it very useful. My best wishes and support with you.

Ravi Nitesh

Thanks for your mail and specially for the 'Garbhanal'. I will appreciate if you can provide me its hard copy. Thanking you.

Prof. Nityanand Pandey

Thanks for publishing my memoirs. The magazines has great photos and excellent articles.

Mahesh Chandra Dewedy